

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180607

UNIVERSAL
LIBRARY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180607

UNIVERSAL
LIBRARY

वरदान

(मौलिक उपन्यास)

लैश्वर्य
प्रेमचंद

सरस्वती प्रेस बनारस

सर्वोदय मासिक्य बन्दिग

‘माता ! मैंने सैकड़ों व्रत रखे, देवताओं की उपासनाएँ कीं, तीर्थ-यात्राएँ कीं, परन्तु मनोरथ पूरा न हुआ। तब तुम्हारी शरण आई। अब तुम्हें छोड़कर कहाँ जाऊँ ? तुमने सदा अपने भक्तों की इच्छाएँ पूरी की हैं। क्या मैं तुम्हारे दरबार से निराश हो जाऊँ ?’

सुवामा इसी प्रकार देर तक विनती करती रही। अकस्मान् उसके चित्त पर अचेत करनेवाले अनुराग का आक्रमण हुआ। उसकी आँखें बन्द हो गईं, और कान में ध्वनि आई—

‘सुवामा ! मैं तुझसे बहुत प्रसन्न हूँ। माँग क्या माँगती है ?’

सुवामा रोमाञ्चित हो गई। उसका हृदय धड़कने लगा। आज बीस वर्ष के पश्चात् महारानी ने उसे दर्शन दिये। वह काँपती हुई बोली:—‘जो कुछ माँगूँगी वह महारानी देंगी ?’

‘हाँ मिलेगा।’

‘मैंने बड़ी तपस्या की है; अतएव बड़ा भारी वरदान माँगूँगी।’

‘क्या लेगी ? कुबेर का धन ?’

‘नहीं।’

‘इन्द्र का बल ?’

‘नहीं।’

‘सरस्वती की विद्या ?’

‘नहीं ?’

‘फिर क्या लेगी ?’

‘संसार का सबसे उत्तम पदार्थ।’

‘वह क्या है ?’

‘सुपूत बेटा।’

‘जो कुल का नाम रोशन करे ?’

‘नहीं।’

‘जो माता पिता की सेवा करे ?’

‘नहीं।’

‘जो विद्वान् और बलवान् हो ?’

‘नहीं ।’

‘फिर सुपूत बेटा किसे कहते हैं ?’

‘जो अपने देश का उपकार करे ।’

‘तेरी बुद्धि को धन्य है ! जा तेरी इच्छा पूरी होगी ।’

[२]

वैराग्य ।

मुंशी शालिग्राम बनारस के पुराने रईस थे । जीवनवृत्ति वकालत थी, और पैतृक सम्पत्ति भी अधिक थी । दशाश्वमेध घाट पर उनका वैभवान्वित गृह आकाश को स्पर्श करता था । उदार ऐसे कि, पच्चीस-तीस हजार की वार्षिक आय भी व्यय को पूरी न होती थी । साधु-ब्राह्मणों के बड़े श्रद्धावान् थे । वे जो कुछ कमाते वह स्वयं ब्रह्मभोज और साधुओं के भाण्डार और सत्कार्य में व्यय हो जाता । नगर में कोई साधु महात्मा आ जाय, वह मुंशीजी का अतिथि । संस्कृत के ऐसे विद्वान कि, बड़े-बड़े पण्डित उनका लोहा मानते थे । वेदान्तीय सिद्धान्तों के वे अनुयायी थे । उनके चित्त की प्रवृत्ति वैराग्य की ओर थी ।

मुंशीजी को स्वभावतः बच्चों से बहुत प्रेम था । महल्ले भर के बच्चे उनके प्रेमवारि से अभिसिञ्चित होते रहते थे । जब वे घर से निकलते थे तब बालकों का एक दल उनके साथ होता था । एक दिन कोई पाषाणहृदया माता अपने बच्चे को मार रही थी । लड़का बिलख-बिलखकर रो रहा था । मुंशीजी से न रहा गया । दौड़े, बच्चे को गोद में उठा लिया और स्त्री के सम्मुख अपना शिर झुका दिया । स्त्री ने उस दिन से अपने लड़के को मारने की शपथ खा ली । जो मनुष्य दूसरों के बालकों का ऐसा स्नेही हो, वह अपने बालक को कितना प्यार करेगा, सो अनुमान से बाहर है । जब से पुत्र पैदा हुआ, मुंशीजी संसार के सब कार्यों से अलग हो गये । कहीं वे लड़के को हिंडोले में

झुला रहे हैं और प्रसन्न हो रहे हैं। कहीं वे उसे एक सुन्दर सैरगाड़ी में बैठाकर स्वयं खींच रहे हैं। एक क्षण के लिए भी वे उसे अपने पास से दूर नहीं करते थे। वे बच्चे के स्नेह में अपने को भूल गये थे।

सुवामा ने लड़के का नाम प्रतापचन्द्र रखा था। जैसा नाम था वैसा ही उसमें गुण भी थे। वह अत्यन्त प्रतिभाशाली और रूपवान् था। जब वह बातें करता, सुननेवाले मुग्ध हो जाते। भव्य ललाट दमक-दमक करता था। अंग ऐसे पुष्ट कि द्विगुण डीलवाले लड़कों को भी वह कुछ न समझता था। इस अल्प आयु ही में उसका मुखमण्डल ऐसा दिव्य और ज्ञानमय था कि यदि वह अचानक किसी अपरिचित मनुष्य के सामने आकर खड़ा हो जाता था तो वह विस्मय से ताकने लगता था।

इस प्रकार हँसते-खेलते छः वर्ष व्यतीत हो गये। आनन्द के दिन पवन की भाँति सन्न से निकल जाते हैं, और पता भी नहीं चलता। वे दुर्भाग्य के दिन और विपत्ति की रातें हैं जो काटे नहीं कटतीं। प्रताप को पैदा हुए अभी कितने दिन हुए! वधाई की मनोहारिणी ध्वनि कानों में गूँज ही रही थी कि, छठी वर्षगाँठ आ पहुँची। छठे वर्ष का अन्त दुर्दिनों का श्रीगणेश था। मुंगी शालिग्राम का सांसारिक सम्बन्ध केवल दिखावटी था। वह निष्काम और निस्सम्बन्ध जीवन व्यतीत करते थे। यद्यपि प्रकट वे सामान्य संसारी मनुष्यों की भाँति संसार के क्लेशों से क्लेशित और मुग्धों से हर्षित दृष्टिगोचर होते थे, तथापि उनका मन सर्वदा उस महान और आनन्दपूर्ण शान्ति का सुख-भोग करता था, जिस पर दुःख के झोंकों और सुख की थपकियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

माघ का महीना था। प्रयाग में कुम्भ का मेला लगा हुआ था। रेलगाड़ियों में यात्री रूई की भाँति भर-भरकर प्रयाग पहुँचाये जाते थे। अस्सी अस्सी बरस के वृद्ध जिनके लिए वर्षों से उठना कठिन हो रहा था—लँगड़ाने, लाटियाँ टेकते मंजिलें तैकरके प्रयागराज को जा रहे थे। बड़े बड़े साधु-महात्मा—जिनके दर्शनों की इच्छा लोगों के

हिमालय की अँधेरी गुफाओं में खींच ले जाती थी—उस समय गंगाजी की पवित्र तरंगों से गले मिलने के लिए आये हुए थे। मुंशी शालिग्राम का मन भी ललचाया। सुवामा से बोले—‘कल स्नान है।’

सुवामा—सारा महल्ला सूना हो गया। कोई मनुष्य नहीं देखता।

मुंशी—तुम चलना स्वीकार नहीं करतीं, नहीं तो बड़ा आनन्द होता। ऐसा मेला तुमने कभी नहीं देखा होगा।

सुवामा—ऐसे मेलों से मेरा जी घबराता है।

मुंशी—मेरा तो जी नहीं मानता। जबसे सुना कि, स्वामी परमानन्दजी आये हैं, तबसे उनके दर्शन के लिए चित्त उद्विग्न हो रहा है।

सुवामा पहले तो उनके जाने पर सहमत न हुई, पर जब देखा कि, ये राकें न रुकेंगे, तब विवश होकर मान गई। उसी दिन मुंशीजी ग्यारह बजे रात को प्रयागराज चले गये। चलते समय उन्होंने प्रताप के मुख का चुम्बन किया और स्त्री को प्रेम से गले लगा लिया। सुवामा ने उस समय देखा कि, उनके नेत्र सजल हैं। उसका कलेजा धक्के से हो गया। जैसे चैत्र मास में कार्ती काली घटाओं को देखकर कृष्ण का हृदय काँपने लगता है, उसी भाँति मुंशीजी के नेत्रों को अश्रुपूर्ण देखकर सुवामा कम्पित हुई, अश्रु की वे धूँँ वैराग्य और त्याग का अगाध समुद्र थी। देखने में वे कैसे नन्हें जल के कण थीं, पर थी वे कितनी गम्भीर और विस्तीर्ण।

उधर मुंशीजी घर से बाहर निकले और उधर सुवामा ने एक ठण्डी श्वास ली। किसी ने उसके हृदय में यह कहा कि, अब मुझे अपने पति के दर्शन न होंगे। एक दिन बीता, दो दिन बीते, चौथा दिन आया और गत हो गया, यहाँ तक कि पूरा सप्ताह बीत गया पर मुंशीजी न आये। तब तो सुवामा की आकुलता होने लगी। तार दिये। आदमी दौड़ावे पर कुछ पता न चला। दूसरा सप्ताह भी इसी प्रयत्न में समाप्त हो गया। मुंशीजी के लौटने की जो कुछ आशा शेष थी, वह सब मिट्टी में मिल गई। मुंशीजी का अदृश्य होना उनके कुटुम्ब मात्र के लिए हो

नहीं, वरन सारे नगर के लिए एक शोकपूर्ण घटना थी। हाटों में, दूकानों पर, हथाइयों में अर्थात् चारों ओर यही वार्तालाप होता था। जो सुनता वही शोक करता। क्या धनी, क्या निर्धन। यह शोक सबको था। उनके कारण चारों ओर उत्साह फैला रहता था। अब एक उदासी छा गई। जिन गलियों से वे बालकों का झुण्ड लेकर निकलते थे, वहाँ अब धूल उड़ रही थी। बच्चे बाराबर उनके पास आने के लिए रोते और हठ करते थे। उन बेचारों को यह सुध कहाँ थी कि, अब वह प्रमोद-सभा भंग हो गई है। उनकी माताएँ आँचल से मुख ढॉप-ढॉपकर रोतीं, मानों उनका कोई सगा प्रेमी मर गया है।

वैसे तो मुंशीजी के गुप्त हो जाने का रोना सभी रोते थे। परन्तु सबसे गाढ़े आँसू उन आदतियों और महाजनों के नेत्रों से गिरते थे, जिनके लेन-देन का लेखा अभी नहीं हुआ था। उन्होंने दस-बारह दिन जैसे-तैसे करके काटे, पश्चात् एक-एक करके लेखा के पत्रे दिखाने लगे। किसी ब्रह्मभोज में दो सौ रुपये का घी आया है और मूल्य नहीं दिया गया, कहीं से दो सौ का मैदा आया हुआ है, बजाज का सहस्रों का लेखा है। मन्दिर बनवाते समय एक महाजन से बीस सहस्र ऋण लिया गया था, वह अभी वैसे ही पड़ा हुआ है। लेखा की तां यह दशा थी। सामग्री की यह दशा कि, एक उत्तम गृह और तत्सम्बन्धिनी सामग्रियों के अतिरिक्त कोई वस्तु न थी, जिससे कोई बड़ी रकम खड़ी हो सके। भूसम्पत्ति बेचने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय न था, जिससे धन प्राप्त करके ऋण चुकाया जाय।

बेचारी सुबामा शिर नीचा किये हुए चटाई पर बैठी हुई थी और प्रतापचन्द्र अपने लकड़ी के घोड़े पर सवार आँगन में टख-टख कर रहा था कि, पण्डित मोटेराम शास्त्री—जो कुल के पुरोहित थे—मुसकुराते हुए भीतर आये। उन्हें प्रसन्न देखकर निराश सुबामा चौंककर उठ बैठी थी कि, शायद ये कोई शुभ समाचार लाये हैं। उनके लिए आसन बिछा दिया और आशा भरी दृष्टि से देखने लगी। पण्डितजी आसन पर बैठे और सुँघनी सुँघते हुए बोले:—‘तुमने महाजनों का लेखा

देखा ?' सुवामा ने निराशा-पूर्ण शब्दों में कहा:—'हाँ, देखा तो ।'

मोटेराम—रकम बड़ी गहरी है । मुंशीजी ने आगा-पीछा कुछ न सोचा, अपने यहाँ कुछ हिसाब किताब न रखा ।

सुवामा—हाँ अब तो यह रकम गहरी ही है, नहीं तो इतने-इतने रुपये क्या एक-एक भोज में उठ गये हैं ?

मोटेराम—सब दिन समान नहीं बीतते ।

सुवामा—अब तो जो ईश्वर करेगा सो होगा, मैं क्या कर सकती हूँ ?

मोटेराम—हाँ ईश्वर की इच्छा तो मूल ही है, मगर तुमने भी कुछ सोचा है ?

सुवामा—हाँ, गाँव बेच डालूंगी ।

मोटेराम—राम राम यह क्या कहती हो ? भूमि विक गई तो फिर बात क्या रह जायगी ?

सुवामा—इसके सिवाय अब अन्य उपाय नहीं है ।

मोटेराम—भला पृथ्वी हाथ से निकल गई तो तुम लोगों का जीवन-निर्वाह कैसे होगा ?

सुवामा—हमारा ईश्वर मालिक है । वही बेटा पार करेगा ।

मोटेराम—यह तो बड़े अफसोस की बात होगी कि ऐसे उपकारी पुरुष के लड़के-बाले दुःख भोगेंगे ।

सुवामा—ईश्वर की यही इच्छा है तो, किसी का क्या बस ?

मोटेराम—भला मैं एक युक्ति बता दूँ कि साँप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे ।

सुवामा—हाँ बतलाइए, बड़ा उपकार होगा ।

मोटेराम—पहिले तो एक दरखास्त लिखवाकर कलक्टर साहिब को दे दो कि, मालगुजारी माफ की जाय । बाकी रुपयों का बन्दोबस्त हमारे ऊपर छोड़ दो । हम जो चाहेंगे करेंगे, परन्तु इलाके पर आँच न आने पायगी ।

सुवामा—कुछ प्रकट भी तो हो, आप इतने रुपये कहाँ से लायेंगे ।

मोटेराम—तुम्हारे लिए रुपये की क्या कमी है ? मुंशीजी के नाम पर बिना लिखा-पढ़ी के पचास हजार रुपयों का बन्दोबस्त हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है। सच तो यह है कि, रुपया रखा हुआ है, तुम्हारे मुँह से हाँ निकलने की देर है।

सुवामा—नगर के भद्र पुरुषों ने एकत्र किया होगा ?

मोटेराम—हाँ बात की बात में रुपया एकत्र हो गया। साहब का इशारा बहुत था।

सुवामा—कर-मुक्ति के लिए प्रार्थनापत्र मुझसे न लिखवाया जायगा और न मैं अपने स्वामी के नाम पर ऋण ही लेना चाहती हूँ। मैं सबका एक एक पैसा अपने गाँवों ही से चुका दूँगी।

यह कहकर सुवामा ने रुखाई से मुँह फेर लिया और उसके पीले तथा शोकान्वित वदन पर क्रोध सा झलकने लगा। मोटेराम ने देखा बात बिगड़ना चाहती है तो सँभलकर बोले—‘अच्छा जैसी तुम्हारी उच्छा। इसमें कोई जबरदस्ती नहीं है। मगर यदि हमने तुमको किसी प्रकार का दुःख उठाते देखा तो उस दिन प्रलय हो जायगा। वस इतना समझ लो !’

सुवामा—तो आप क्या यह चाहते हैं कि, मैं अपने पति के नाम पर दूसरों की कृतज्ञता का भार रखूँ ? मैं इसी घर में जल मरूँगी, अनशन करते करते मर जाऊँगी, पर किसी की उपकृत न बनूँगी।

मोटेराम—छी ! छी ! तुम्हारे ऊपर निहोरा कौन कर सकता है ? कैसी बात मुख से निकालती हो ? ऋण लेने में कोई लाज नहीं है। कौन रईस है जिस पर लाख दो लाख का ऋण न हो।

सुवामा—मुझे विश्वास नहीं होता कि, इस ऋण में निहोरा नहीं है।

मोटेराम—सुवामा, तुम्हारी बुद्धि कहाँ गई ? भला तुम सब प्रकार के दुःख उठा लोगी। पर क्या तुम्हें इस बालक पर दया नहीं आती ?

मोटेराम की यह चोट बहुत कड़ी लगी। सुवामा सजलनयना हो गई। उसने पुत्र की ओर करुणा भरी दृष्टि से देखा। इस बच्चे के लिए

मैंने कौन-कौन सी तपस्या नहीं की ? क्या उसके भाग्य में दुःख ही बना है ? जो अमोला जल वायु के प्रखर झोंकों से बचाया जाता था, जिस पर सूर्य की प्रचण्ड किरणें न पड़ने पाती थीं, जो स्नेहसुधा से अभिसिंचित रहता था, क्या वह आज इस जलती हुई धूप और इस आग की लपट में मुझाईया ? सुवामा कई मिनट तक इसी चिन्ता में बैठी रही । मोटेराम मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे कि, अब सफलीभूत हुआ । इतने में सुवामा ने शिर उठाकर कहा:—‘जिसके पिता ने लाखों को जिलाया, खिलाया, वह दूसरों का आश्रित नहीं बन सकता । यदि पिता का धर्म उसका सहायक होगा तो, वह स्वयं दम को खिलाकर खाएगा । (लड़के को बुलाते हुए) बेटा ! तनिक यहाँ आओ । कल से तुम्हारी मिठाई, दूध, घी सब बन्द हो जायेंगे । रोओगे तो नहीं ?’ यह कहकर उसने बेटे को प्यार से गोद में बैठा लिया और उसके गुलाबी गालों का, पसीना पोंछकर, चुम्बन कर लिया ।

प्रताप—क्या कहा ? कल से मिठाई बन्द होगी ! क्यों ? क्या हलवाई की दूकान पर मिठाई नहीं है ?

सुवामा—मिठाई तो है पर उसका रुपया कौन देगा ?

प्रताप—हम बड़े होंगे तो उसको बहुत-सा रुपया देंगे । चल ! देख ! देख ! ‘देख माँ कैसा तेज घोड़ा है ।’ सुवामा की आँखों में फिर जल भर आया । ‘हा हन्त ! इस सौन्दर्य और मुकुमारता की मूर्ति पर अभी से दरिद्रता की आपत्तियाँ आ जायेंगी । नहीं, नहीं मैं स्वयं सब भोग लूँगी । परन्तु अपने प्राणप्यारे बच्चे के ऊपर आपत्ति की परछाहीं तक न आने दूँगी ।’ माता तो यह सोच रही थी और प्रताप अपने हठी और मुँहजोर घोड़े पर चढ़ने में पूर्ण शक्ति से लीन हो रहा था । बच्चे मन के राजा होते हैं ।

अभिप्राय यह कि मोटेराम ने बहुत कुछ जाल फैलाया । विविध प्रकार का वाक्चातुर्य दिखलाया, परन्तु सुवामा ने एक बार नहीं करके हाँ न की । उसके इस आत्मरक्षा का समाचार जिसने सुना, धन्य धन्य कहा । लोगों के हृदय में उसकी प्रतिष्ठा दूनी हो गई । उसने वही

किया जो ऐसे सन्तोषपूर्ण और उदारहृदय मनुष्यकी स्त्री को करना उचित था ।

इसके पन्द्रहवें दिन इलाका नीलाम पर चढ़ा । पचास सहस्र रुपये प्राप्त हुए । कुल ऋण चुका दिया गया । घर का अनावश्यक सामान बेच दिया गया । मकान में भी सुवामा ने भीतर से ऊँची-ऊँची दीवारें खिंचवाकर दो अलग अलग खण्ड कर दिये । एक में आप रहने लगी और दूसरा भाड़े पर उठा दिया ।

[३]

नये पड़ोसियों से मेलजोल

मुंशी संजीवनलाल—जिन्होंने सुवामा का घर भाड़े पर लिया था—बड़े विचारशील मनुष्य थे । पहले एक प्रतिष्ठित पद पर नियुक्त थे, किन्तु अपनी स्वतंत्र इच्छा के कारण अफसरों को प्रसन्न न रख सके । यहाँ तक कि उनकी रुप्रता से विवश होकर इस्तीफा दे दिया । नौकरी के समय में कुछ पूँजी एकत्र कर ली थी । इसलिए नौकरी छोड़ते ही वे ठेकेदारी की ओर प्रवृत्त हुए । और उन्होंने परिश्रम द्वारा अल्प काल ही में अच्छी सम्पत्ति बना ली । इस समय उनकी आय चार-पाँच सौ मासिक से कम न थी । उन्होंने कुछ ऐसी अनुभव-शालिनी बुद्धि पाई थी कि, जिस कार्य में हाथ डालते, उसमें लाभ को छोड़ हानि न होती ।

मुंशी संजीवनलाल का कुटुम्ब बड़ा न था । संतानें तो ईश्वर ने कई दीं ; पर इस समय माता-पिता के नयनों की पुतली केवल एक पुत्री ही थी । उसका नाम 'वृजरानी' था । वही दम्पति का जीवनाश्रय थी ।

प्रतापचंद्र और वृजरानी में पहले ही दिन से मैत्री आरम्भ हो गई । आध घण्टे में दोनों चिड़ियों की भाँति चहकने लगे । विरजन ने अपनी गुड़िया, खिलौने और बाजे दिखाये ; प्रतापचंद्र ने अपनी

किताबें, लेखनी और चित्र दिखाये। विरजन की माता मुंशीला ने प्रतापचंद्र को गोद में ले लिया और प्यार किया। उस दिन से वह नित्य सन्ध्या को आता और दोनों साथ साथ खेलते। ऐसा प्रतीत होता था कि, दोनों भाई-बहिन हैं। मुंशीला दोनों बालकों को गोद में बैठाती और प्यार करती। घण्टों टकटकी लगाये दोनों बच्चों को देखा करती, विरजन भी कभी कभी प्रताप के घर जाती। विपत्ति की मारी सुवामा उसे देखकर अपना दुख भूल जाती। छाती से लगा लेती और इसकी भोली-भोली बातें सुनकर अपना मन बहलाती।

एक दिन मुंशी संजीवनलाल बाहर से आये तो क्या देखते हैं कि, प्रताप और विरजन दोनों दफ्तर में कुर्सियों पर बैठे हैं। प्रताप कोई पुस्तक पढ़ रहा है और विरजन ध्यान लगाये सुन रही है। दोनों ने ज्यों ही मुंशीजी को देखा, उठ खड़े हुए। विरजन तो दौड़कर पिता की गोद में जा बैठी और प्रताप शिर नीचा करके एक ओर खड़ा हो गया। कैसा गुणवान् बालक था। आयु अभी आठ वर्ष से अधिक नहीं थी; परन्तु लक्षण से भावी प्रतिभा झलक रही थी। दिव्य मुखमण्डल, पतले-पतले लाल-लाल अधर, तीव्र चितवन, काले-काले भ्रमर के समान बाल, उस पर स्वच्छ कपड़े। मुंशीजी ने कहा:—‘यहाँ आओ प्रताप!’

प्रताप धीरे धीरे कुछ हिचकिचाता-सकुचाता समीप आया। मुंशीजी ने पितृवत् प्रेम से उसे गोद में बैठा लिया और पृच्छा:—‘तुम अभी कौन सी किताब पढ़ रहे थे?’

प्रताप बोलने ही को था कि, विरजन बोल उठी:—‘बाबा! अच्छी अच्छी कहानियाँ थीं। क्यों बाबा! क्या पहले चिड़ियाँ भी हमारी भाँति बातें करती थीं?’

मुंशीजी मुसकुराकर बोले—‘हाँ! वे खूब बोलती थीं।’ अभी उनके मुँह से पूरी बात भी न निकलने पाई थी कि, प्रताप—जिसका सङ्कोच अब गायब हो चला था, बोला:—‘नहीं विरजन, तुम्हें भुलाते हैं। ये कहानियाँ बनाई हुई हैं।’ मुंशीजी इस निर्भीकता-पूर्ण खण्डन पर, खूब हँसे।

अब तो प्रताप तोते की भाँति चहकने लगा,—‘स्कूल इतना बड़ा है कि, नगर भर के लोग उसमें बैठ जायँ। दीवारें इतनी ऊँची हैं, जैसे ताड़। बलदेवप्रसाद ने जो गेंद में हिट लगाई तो वह आकाश में चला गया। बड़े मास्टर साहब की मेज पर हरी-हरी बनात बिछी हुई है। उस पर फूलों से भरे गिलास रखे हैं। गंगाजी का पानी नीला है। ऐसे जोर से बहता है कि, बीच में पहाड़ भी हो तो वह जाय। वहाँ एक साधु बाबा हैं। रेल दौड़ती है सन-सन। उसका इञ्जिन बोलता है भक-भक। इञ्जिन में भाप होती है, उसी के जोर से गाड़ी चलती है। गाड़ी के साथ पेड़ भी दौड़ते दिखाई देते हैं।’

इस भाँति कितनी ही बातें प्रताप ने अपनी भोली-भोली बोली में कहीं। विरजन चित्र की भाँति चुपचाप बैठी हुई सुन रही थी। रेल पर वह भी दो-तीन बार सवार हुई थी। परन्तु उसे आज तक यह न ज्ञात था कि उसे किसने बनाया और वह क्यों कर चलती है। दो बार उसने गुरुजी से यह प्रश्न किया था; परन्तु उन्होंने यही कहकर टाल दिया कि, बच्चा ईश्वर की महिमा अपरम्पार है। विरजन ने भी समझ रखा कि, ईश्वर की महिमा कोई बड़ा भारी और बलवान घोड़ा है, जो इतनी गाड़ियों को सन-सन खींचे लिये जाता है। जब प्रताप चुप हुआ तो विरजन ने पिता के गले में हाथ डालकर कहा:—‘बाबा ! हम भी प्रताप की किताब पढ़ेंगे।’

मुंशी—बेटी, तुम तो संस्कृत पढ़ती हो, यह तो भाषा है।

विरजन—‘तो मैं भी भाषा ही पढ़ूँगी। इसमें कैसी अच्छी-अच्छी कहानियाँ हैं। मेरी किताब में तो एक भी कहानी नहीं। क्यों बाबा, पढ़ना किसे कहते हैं।’

मुंशीजी बगलें झाँकने लगे। इन्होंने आज तक आप ही कभी-ध्यान नहीं दिया था कि, पढ़ना क्या वस्तु है ? अभी वे माथा ही खुजला रहे थे कि, प्रताप बोल उठा—‘मुझे तुमने पढ़ते देखा, उसी को पढ़ना कहते हैं।’

विरजन—क्या मैं नहीं पढ़ती ? मेरे पढ़ने को पढ़ना नहीं कहते ?

जा खड़ी हुई। देखा तो वह सुन्न हुई पड़ी है, आँखें मुंदी हुई हैं और लम्बी साँसें ले रही हैं। उसका हाथ थामकर विरजन झिझोरने लगी; 'चची! कैसा जी है? आँखें खोलो; कैसा जी है?'

परन्तु चची ने आँखें न खोली। तब वह ताक पर से तेल उतारकर सुवामा के सिर पर धीरे धीरे मलने लगी। उस बेचारी को शिर में महीनों में तेल डालने का अवसर न मिला था; ठण्डक पहुँची तो आँख खुल गई।

विरजन—चची! कैसा जी है? कहीं दर्द तो नहीं?

सुवामा—नहीं बेटी, दर्द कहीं नहीं है। अब मैं बिल्कुल अच्छी।
) भैया कहाँ है?

विरजन—वे तो मेरे घर हैं, बहुत रो रहे हैं।

सुवामा—तुम जाओ, उसके साथ खेलो। अब मैं बिल्कुल अच्छी हूँ।

अभी ये ही बातें हो रही थी कि, मुशीला का भी शुभागमन हुआ। उसे सुवामा से मिलने की तो बहुत दिनों से उत्कण्ठा थी, परन्तु कोई अवसर न मिलता था। इस समय वह सान्त्वना देने के बहाने से आ पहुँची। विरजन ने अपनी माता को देखा तो उछल पड़ी, और ताली बजा-बजाकर कहने लगी 'मा आई, मा आई'।

दोनों स्त्रियों में शिष्टाचार की बातें होने लगीं। बातों बातों में दीपक जल उठा। किसी को ध्यान भी न हुआ कि, प्रताप कहाँ है। थोड़ी देर तक तो वह द्वार पर खड़ा रोता रहा, फिर झटपट आँखें पोंछकर डॉक्टर किचलू के घर की ओर लपकता हुआ चला। डॉक्टर साहब मुंशी शालिग्राम के मित्रों में से थे। और जब कभी काम पड़ता तो वे ही बुलाये जाते थे। प्रताप को केवल इतना विदित था कि, वे बरना नदी के किनारे लाल बँगले में रहने हैं। उसे अब तक अपने महल्ले से बाहर निकलने का कभी अवसर न पड़ा था। परन्तु उस समय मातृभक्ति के वेग से उद्विग्न होने के कारण उसे इन रुकावटों का कुछ भी ध्यान न हुआ। घर से निकलकर बाजार में आया और एक इक्केवान से बोला:—'लाल बँगले चलोगे?' लाल बँगला प्रसिद्ध

स्थान था। इकावान् तैयार हो गया। आठ बजते-बजते डॉक्टर साहब की फिटन सुवामा के द्वार पर आ पहुँची। यहाँ इस समय चारों ओर उसकी खोज हो रही थी कि अचानक वह सवेग पैर बढ़ाता हुआ भीतर गया और बोला:—‘पर्दा करो। डॉक्टर साहब आते हैं।’

सुवामा और सुशीला दोनों चौंक पड़ीं। समझ गई, यह डॉक्टर साहब को बुलाने गया था। सुवामा ने प्रेमाधिक्य से उसे गोदी में बैठा लिया और नेत्रों में आँसू भरकर पूछा—‘क्या अकेले चले गये थे? तुम्हें रास्ता कैसे मालूम हुआ? डर नहीं लगा? हमको बतलाया भी नहीं, यों ही चले गये? तुम खो जाते तो मैं क्या करती? ऐसा लाल कहाँ पाती?’ यह कहकर उसने बेटे को बार बार चूम लिया। प्रताप इतना प्रसन्न था, मानों परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया है। थोड़ी देर में पर्दा हुआ और डॉक्टर साहब आये। उन्होंने सुवामा की नाड़ी देखी और सान्त्वना दी। वे प्रताप को गोद में बैठकर बातें करते रहे। औषध साथ लेते आये थे। उसे पिलाने की सम्मति देकर नौ बजे बँगले को लौट गये। परन्तु जीर्णज्वर था, अतएव पूरे मास भर सुवामा को कड़वी-कड़वी औषधियाँ खानी पड़ीं। डॉक्टर साहब दोनों वक्त आते और ऐसी कृपा और ध्यान रखते, मानों सुवामा उनकी बहिन है। एक बार सुवामा ने डरते-डरते फ्रीस के रुपये एक पात्र में रखकर सामने रखे। पर डॉक्टर साहब ने उन्हें हाथ तक न लगाया। केवल इतना कहा—‘इन्हें मेरी ओर से प्रताप को दे दीजिएगा। वह पैदल स्कूल जाता है, पैरगाड़ी मोल ले लेगा।’

विरजन और उसकी माता दोनों सुवामा की सुश्रूषा के लिए उपस्थित रहतीं। माता चाहे विलम्ब भी कर जायँ, परन्तु विरजन वहाँ से एक क्षण के लिए भी न टलती। दवा पिलाती, पान देती। जब सुवामा का जी अच्छा होता तो वह भोली-भोली बातों द्वारा उसका मन बहलाती। खेलना-कूदना सब छूट गया। जब सुवामा बहुत हठ करती तो प्रताप के संग बाग में खेलने चली जाती। दीपक लगते ही फिर

आ बैठती और जब तक निद्रा के मारे झुक-झुक न पड़ती वहाँ से उठने का नाम न लेती। वरन प्रायः वहीं सो जाती। रात को नौकर गोद में उठाकर घर ले जाता। न जाने उसे ऐसी कौन-सी धुन सवार हो गई थी।

एक दिन वृजरानी सुवामा के सिरहाने बैठी पंखा झल रही थी। न जाने किस ध्यान में मग्न था। आँखें दीवार की ओर लगी हुईं थी। और जिस प्रकार वृक्षों पर कौमुदी लहराती है, उसी भाँति भीनी-भीनी सुसकान उसके अधरो पर लहरा रही थी। उसे कुछ भी ध्यान न थी कि, चची मेरी ओर देख रही है। अचानक उसके हाथ से पंखा छूट पड़ा। त्यों ही वह उसको उठाने के लिए झुकी कि, सुवामा ने उसे गले लगा लिया और पुचकारकर पूछा—‘विरजन, सत्य कहो, तुम अभी क्या सोच रही थी?’

विरजन ने माथा झुका लिया और कुछ लज्जित होकर कहा—‘कुछ नहीं, तुमको न बतलाऊँगी।’

सुवामा—मेरी अच्छी विरजन बता दो, क्या सोचती थी?

विरजन—(लजाते हुए) सोचती थी कि...जाओ हँसो मत...न बतलाऊँगी।

सुवामा—अच्छा ले न हँसूँगी, बताओ। ले यही तो अब अच्छा नहीं लगता, फिर मैं आँखें मूँद लूँगी।

विरजन—किसी से कहोगी तो नहीं?

सुवामा—नहीं किसी से न कहूँगी।

विरजन—साचती थी कि, जब प्रताप से मेरा विवाह हो जायगा तब, बड़े आनन्द से रहूँगी।

सुवामा ने उसे छाती से लगा लिया और कहा—‘बेटी! वह तो तेरा भाई है।’

विरजन—हाँ भाई है। मैं जान गई। तुम मुझे बहू न बनाओगी।

सुवामा—आज लल्लू को आने दो, उससे पूछूँ, देखूँ क्या कहता है।

विरजन—नहीं नहीं उनसे न कहना, मैं तुम्हारे पैरों पढ़ूँ ।

मुवामा—मैं तो कह दूँगी ।

विरजन—तुम्हें हमारी कसम उनको न कहना ।

[५]

शिष्ट जीवन के दृश्य

दिन जाते देर नहीं लगती । दो वर्ष व्यतीत हो गये । पण्डित मोटेराम नित प्रातःकाल आते और सिद्धान्तकौमुदी पढ़ाते, परन्तु अब उनका आना केवल नियम पालने के हेतु ही था ; क्योंकि इस पुस्तक के पढ़ने में अब विरजन का जी न लगता था । एक मुंशीजी इञ्जिनियर के दफ्तर से आये । कमरे में बैठे थे । नौकर जूते का फीता खोल रहा था कि, रधिया महरी मुसकराती हुई घर में से निकली और उनके हाथ में मुहर छाप लगा हुआ लिफाफा रख, मुख फेर हँसने लगी । श्रीनाम पर लिखा हुआ था,—‘श्रीमान् बाबा साहब की सेवा में प्राप्त हो ।’

मुंशी—अरे तू किसका लिफाफा ले आई ? यह मेरा नहीं है ।

महरी—सर्कार ही का तो है, खोलें तो आप ।

मुंशी—किसने दिया ? कोई आदमी बाहर से आया था ?

महरी मुसकराती हुई बोलीः—‘आप खोलेंगे तो पता चल जायगा ।’

मुंशीजी ने विस्मित होकर लिफाफा—खोला । उसमें से जो पत्र निकला उसमें यह लिखा हुआ थाः—

‘बाबा को विरजन का प्रणाम और पालागन पहुँचे । यहाँ आपकी कृपा से कुशल, मंगल है । आपका कुशल, श्री विश्वनाथजी से सदा मनाया करती हूँ । मैंने प्रताप से भाषा सीख ली । वे स्कूल से आकर सन्ध्या को मुझे नित्य पढ़ाते हैं (अब आप हमारे लिए अच्छी-अच्छी पुस्तकें लाइए, क्योंकि पढ़ना ही जीवन का सुख है, और विद्या अमूल्य

वस्तु है। वेदपुराण में इसका माहात्म्य लिखा है। मनुष्य को चाहिए कि, विद्या-धन तन-मन से एकत्र करे। विद्या से सब दुःख दूर हो जाते हैं। मैंने कल बैतालपच्चीसी की कहानी चची को सुनाई थी। उन्होंने मुझे एक सुन्दर गुड़िया पुरस्कार में दी है। बहुत अच्छी है। मैं उसका विवाह करूँगी, तब आपसे रुपया लूँगी। मैं अब पण्डितजी से न पढ़ूँगी। माँ नहीं जानती कि मैं भाया पढ़ती हूँ।

आपकी प्यारी—

विरजन।

प्रशस्ति देखते ही मुंशीजी के अन्तःकरण में गुदगुदी होने लगी। फिर तो उन्होंने एक ही साँस में सारी चिट्ठी पढ़ डाली। मारे आनन्द के नंगे पाँव हँसते हुए भीतर दौड़े। प्रताप को गोद में उठा लिया, और फिर दोनों बच्चों का हाथ पकड़े हुए सुशीला के पास गये। उमे चिट्ठी दिखाकर कहा,—‘बूझो किसकी चिट्ठी है?’

सुशीला—लाओ हाथ में दो, देखूँ।

मुंशीजी—नहीं वहीं से बैठी-बैठी बताओ, जल्दी।

सुशीला—बूझ जाऊँ तो क्या दोगे?

मुंशीजी—पचास रुपये दूध के धोये हुए।

सुशीला—पहिले रुपये निकालकर रख दो, नहीं तो मुकर जाओगे।

मुंशीजी—मुकरनेवाले को कुछ कहता हूँ, अभी रुपये लो, ऐसे कोई टुटपूँजिया समझ लिया है?

यह कहकर दस रुपये का एक नोट जेब से निकालकर दिखाया।

सुशीला—कितने का नोट है?

मुंशीजी—पचास रुपये का, हाथ में लेकर देख लो।

सुशीला—ले लूँगी कहे देती हूँ।

मुंशीजी—हाँ हाँ ले लेना, पहिले बताओ तो सही।

सुशीला—‘लल्लू का है, लाइए नोट, अब मैं न माँदूँगी कइकर उठी और मुंशीजी का हाथ थाम लिया।

‘शीजी—ऐसी क्या डकैती है; नोट छीने लेती हो।

सुशीला—वचन नहीं दिया था ? अभी से विचलने लगे ।

मुंशीजी—तुमने बूझा भी, सर्वथा भ्रम में पड़ गई ।

सुशीला—चलो चलो बहाना करते हो, नोट हड़पने की इच्छा है ।
क्यों लल्लू, तुम्हारी ही चिट्ठी है न ?

प्रताप नीची दृष्टि से मुंशीजी की ओर देखकर धीरे से बोला—
‘मैंने कहाँ लिखी ?’

मुन्शीजी—लजाओ, लजाओ ।

सुशीला—वह झूठ बोलता है । उसी की चिट्ठी है । तुम लोग
गँठकर आये हो ।

प्रताप—मेरी चिट्ठी नहीं है, सच ! विरजन ने लिखी है ।

सुशीला चकित होकर बोली—‘विरजन की ?’ फिर, उसने दौड़-
कर पति के हाथ से चिट्ठी छीन ली और भौंचक्की होकर उसे देखने
लगी, परन्तु अब भी विश्वास न आया । विरजन से पृच्छा—‘क्यों वेटी,
यह तुम्हारी लिखी है ?’ विरजन ने शिर झुकाकर कहा—‘हाँ !’ यह
सुनते ही माता ने उसे कण्ठ से लगा लिया ।

अब आज से विरजन की यह दशा हो गई कि, जब देखिए लेखनी
लिये हुए पत्रे काले कर रही है । घर के धन्धों से तो उसे पहिले ही
कुछ प्रयोजन न था ; लिखने का आना सोने में सोहागा हो गया ।
माता उसकी तल्लीनता देख-देखकर प्रमुदित होती, पिता हर्ष से फूला
न समाता, नित्य नवीन पुस्तकें लाता कि, विरजन सयानी होगी तो
पढ़ेगी । यदि कभी वह अपने पाँव धो लेती, या भोजन करके अपने
ही हाथ धोने लगती तो माता महरियों पर बहुत क्रुद्ध होती,—‘आँखें
फूट गई हैं । चर्बी छा गई है । वह अपने हाथ से पानी उँडेल रही है
और तुम खड़ी मुँह ताकती हो !’

इसी प्रकार काल बीतता चला गया, विरजन का बारहवाँ वर्ष
पूर्ण हुआ, परन्तु अभी तक उसे चावल उबालना तक न आता था ।
चूल्हे के सामने बैठने का कभी अवसर ही न आया । सुवामा ने एक

दिन उसकी माता से कहा—‘बहिन, विरजन सयानी हुई। क्या कुछ गुन-दंग न सिखाओगी ?’

मुशीला—क्या कहूँ, जी तो चाहता है कि, लगा लगाऊँ, परन्तु कुछ सोचकर रुक जाती हूँ ।

मुवामा—क्या सोचकर रुक जाती हो ?

मुशीला—कुछ नहीं । आलस आ जाती है ।

मुवामा—तो यह काम मुझे सौंप दो । भोजन बनाना स्त्रियों के लिए सबसे आवश्यक बात है ।

मुशीला—अभी चूल्हे के सामने उससे बैठा न जायगा ।

मुवामा—काम करने ही से आता है ।

मुशीला—(झेंपते हुए) फूल से गाल कुम्हला जायेंगे ।

मुवामा—(हँसकर) बिना फूल के मुझाये कहीं फल लगते हैं ?

दूसरे दिन से विरजन भोजन बनाने लगी । पहिले दस-पाँच दिन उमे चूल्हे के सामने बैठने में बड़ा कष्ट हुआ । आग न जलती, फूँकने लगती तो नेत्रों से जल बहता । वे बूटी की भौँति लाल हो जाते । चिनगारियों से कई रेशमी साड़ियाँ सत्यानाश हो गईं । हाथों में छाले पड़ गये । परन्तु क्रमशः सारे क्लेश दूर हो गये । मुवामा ऐसी मुशीला स्त्री थी कि कभी रुष्ट न होती । प्रतिदिन उसे पुचकारकर काम में लगाये रहती ।

अभी विरजन को भोजन बनाने दो मास से अधिक न हुए होंगे कि, एक दिन उसने प्रताप से कहाः—‘लल्लू ! मुझे भोजन बनाना आ गया ।’

प्रताप—सच ?

विरजन—कल चची ने मेरा बनाया भोजन किया था । बहुत प्रसन्न हुई ।

प्रताप—तो भई एक दिन मुझे भी नेवता दो ।

विरजन ने प्रसन्न होकर कहाः—‘अच्छा कल ।’

दूसरे दिन नौ बजे विरजन ने प्रताप को भोजन करने के लिए

बुलाया। उसने जाकर देखा तो चोंका लगा हुआ है। नवीन मिट्टी की मीठी-मीठी सुगन्ध आ रही है। आसन स्वच्छता से बिछा हुआ है। एक थाली में चावल और चपातियाँ हैं। दाल और तरकारियाँ अलग-अलग कटोरियों में रखी हुई हैं। लोटा और गिलास पानी से भरे हुए रखे हैं। यह स्वच्छता और ढंग देखकर प्रताप सीधा दौड़ा हुआ मुंशी संजीवन-लाल के पास गया और उन्हें लाकर चौके के सामने खड़ा कर दिया। मुंशीजी खुशी से उछल पड़े। चट कपड़े उतार हाथ-पैर धो प्रताप के साथ चौके में जा बैठे। बेचारी विरजन क्या जानती थी कि ये महाशय भी बिना बुलाये पाहुने हो जायेंगे। उसने केवल प्रताप के लिए भोजन बनाया था। वह उस समय बहुत लजाई और दबी आँखों से माता की ओर देखने लगी। मुशीला ताड़ गई। मुसकुराकर मुंशीजी से बोली:—‘तुम्हारे लिए अलग भोजन बना है। लड़कों के बीच में क्या जाके कूद पड़े।’

वृजरानी ने लजाते हुए दो थालियों में थोड़ा-थोड़ा भोजन परोसा।

मुंशीजी—विरजन ने चपातियाँ अच्छी बनाई हैं। नर्म, श्वेत, और मीठी।

प्रताप—चावल, देखिए छिटक दो और चुन लो।

मुंशीजी—मैंने ऐसी चपातियाँ कभी नहीं खाईं। सालन बहुत स्वादिष्ट है।

‘विरजन ! चचा को शोरबेदार आलू दो’ यह कहकर प्रताप हँसने लगा। विरजन ने लजाकर सिर नीचे कर लिया। पतीली शुष्क हो रही थी।

मुशीला—(पति से) अब उठोगे भी, सारी रसोई चट कर गये, तो भी अड़े बैठे हो।

मुंशीजी—क्या ! तुम्हारी राल टपक रही है ?

निदान दोनों रसोई की इतिश्री करके उठे। मुंशीजी ने उसी समय एक मोहर निकालकर विरजन को पुरस्कार में दी।

[६]

डिण्टी श्यामाचरण

डिण्टी श्यामाचरण की धाक सारे नगर में छाई हुई थी। नगर में कोई ऐसा हाकिम न था जिसकी लोग इतनी प्रतिष्ठा करते हों। इसका कारण कुछ तो यह था कि, वे स्वभाव के मिलनसार और सहनशील थे और कुछ यह कि, उत्कोच से (रिश्वत से) उन्हें बड़ी घृणा थी। न्यायविचार ऐसी सूक्ष्मता से करते थे कि दस बारह वर्ष के भीतर कदाचित् उनके दो ही चार फैसलों की अपील हुई होगी। अंग्रेजी का एक अक्षर न जानते थे ; परन्तु बैरिस्टरों और वकीलों को भी उनकी नैतिक पहुँच और सूक्ष्म-दर्शिता पर आश्चर्य होता था। स्वभाव में स्वाधीनता कूट-कूटकर भरी थी। घर और न्यायालय के अतिरिक्त किसी ने उन्हें और कहीं आने-जाते नहीं देखा। मुंशी शालिग्राम जब तक जीवित था यों कहें कि वर्तमान थे, तब तक कभी कभी चित्त-विनोदार्थ उनके यहाँ चले जाते थे। जब से वे लुप्त हो गये, डिण्टीसाहब ने घर छोड़कर हिलने की शपथ कर ली। कई वर्ष हुए एक बार कलक्टर साहब को सलाम करने गये थे। खानसामा ने कहा—‘साहब स्नान कर रहे हैं।’ दो घण्टे तक वरामदे में एक मोढ़े पर बैठे प्रतीक्षा करते रहे। तदनन्तर साहब बहादुर हाथ में एक टेनिस बैट लिये हुए निकले और बोले:—‘बाबू साहब, हमका खेद है कि, आपको हमारी वाट देखनी पड़ी। मुझे आज अवकाश नहीं है। कलब घर जाना है। आप फिर कभी आवें।’

यह सुनकर उन्होंने साहब बहादुर को सलाम किया और इतनी-सी बात पर फिर किसी अंग्रेज की भेंट को न गये। वंशप्रतिष्ठा और आत्मगौरव पर उन्हें बड़ा अभिमान था। वे बड़े ही रसिक पुरुष थे। उनकी बातें हास्य से पूर्ण होती थीं। सन्ध्या के समय जब वे कतिपय विशिष्ट मित्रों के साथ द्वारांगन में बैठते, तो उनके उच्च हास्य की गूँजती हुई प्रतिध्वनि वाटिका से सुनाई देती थी। नौकरों-चाकरों से वे बहुत

सरल व्यवहार रखते थे, यहाँ तक कि, उनके संग अलाव के पास बैठने में भी उनको कुछ सङ्कोच न था। परन्तु उनकी धाक ऐसी छाई हुई थी कि उनकी इस सज्जना से किसी को अनुचित लाभ उठाने का साहस न होता था। चाल-ढाल सामान्य रखते थे। कोट-पतलून से उन्हें घृणा थी। बटनदार ऊँची अचकन, उसपर एक रेशमी काम की अवा, काला शिमला, ढीला पाजामा और दिह्लीवाल नोकदार जूता उनकी मुख्य पोशाक थी। उनके दुहरे शरीर, गुलाबी चेहरे, और मध्यम डील पर जितनी यह पोशाक शोभा देती थी, उतनी कोट-पतलून से सम्भव न थी। यद्यपि उनकी धाक सारे नगर भर में फैली हुई थी, तथापि अपने घर के मण्डलान्तर्गत उनकी एक न चलती थी यहाँ उनकी सुयोग्य अर्धांगिनी का साम्राज्य था। वे अपने अधि-कृति प्रान्त में स्वच्छन्दतापूर्वक शासन करती थीं। कई वर्ष व्यतीत हुए डिप्टी साहब ने उनकी इच्छा के विरुद्ध एक महाराजिन नौकर रख ली थी। महाराजिन कुछ रँगिली थी, प्रेमवती अपने पति की इस अनुचित कृति पर ऐसी रुष्ट हुई कि, कई सप्ताह तक कोपभवन में बैठी रही। निदान विवश होकर डिप्टी साहब ने महाराजिन को विदा कर दिया। तबसे उन्हें फिर कभी गृहस्थी के व्यवहार में हस्तश्रेप करने का साहस न हुआ।

मुंशीजी के दो बेटे और एक बेटा थी। बड़ा लड़का राधाचरण गतवर्ष डिगरी प्राप्त करके इस समय रुड़की कॉलेज में पढ़ता था। उसका विवाह फतहपुर सीकरी के एक रईस के यहाँ हुआ था। मँझली लड़की का नाम सेवती था। उसका विवाह भी प्रयाग के एक धनी घराने में हुआ था। छोटा लड़का कमलाचरण अभी तक अविवाहित था। प्रेमवती ने बचपन ही से लाड़-प्यार करके उसे ऐसा बिगाड़ दिया था कि उसका मन पढ़ने-लिखने में तनिक भी न लगता था। पन्द्रह वर्ष का हो चुका था, पर अभी तक सीधा-सा पत्र भी न लिख सकता था। मियाँजी बैठे। उन्हें इसने एक मास के भीतर निकालकर साँस ली। तब पाठशाला में नाम लिखाया गया। वहाँ जाते ही उसे

ज्वर चढ़ आता और शिर दुखने लगता था। इसलिए वहाँ से भी वह उठा लिया गया। तब एक मास्टर साहब नियत हुए। और तीन महीने रहे, परन्तु, इतने दिनों में कमलाचरण ने कठिनता से तीन पाठ पढ़े होंगे। निदान मास्टर साहब भी विदा हो गये। तब डिप्टी साहब ने स्वयं पढ़ाना निश्चित किया। परन्तु एक ही सप्ताह में उन्हें कई बार कमला का शिर हिलाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। साक्षियों के बयान और वकीलों की सूक्ष्म आलोचनाओं के तत्त्व को समझना इतना कठिन नहीं है, जितना किसी निरुत्साही लड़के के मन में शिक्षारुचि उत्पन्न करना।

प्रेमवती ने इस मारधाड़ पर ऐसा उत्पात मचाया कि, अन्त में डिप्टी साहब ने भी झल्लाकर पढ़ाना छोड़ दिया। कमला कुछ ऐसा रूपवान्, मुकुमार, और मधुरभाषी था कि, माता उसे सब लड़कों से अधिक चाहती थी। इस अनुचित लाड़-प्यार ने उसे पतंग, कवूतर-बाज्री और इमी प्रकार के अन्य कुत्र्यमनों का प्रेमी बना दिया था। सवेरा हुआ और कवूतर उड़ाये जाने लगे। बटेरों के जोड़ छूटने लगे, सन्ध्या हुई और पतंग के लम्बे लम्बे पेच होने लगे। कुछ दिनों से जूए का चस्का भी पड़ चला था। दर्पण, कंधी और इत्र-तेल में तो मानों उसके प्राण ही बसते थे।

प्रेमवती एक दिन सुवामा से मिलने गई हुई थी। वहाँ उसने वृजरानी को देखा और उसी दिन से उसका जी ललचाया हुआ था कि यदि यह बहू वन मेरे घर में आवे तो घर का भाग्य जाग उठे। उसने सुशीला पर अपना यह भाव प्रगट किया। विरजन को तेरहवाँ आरम्भ हो चुका था। पति, पत्नी में विवाह के संबन्ध में बातचीत हो रही थी। प्रेमवती की इच्छा पाकर दोनों फूले न समाये। एक तो परिचित परिवार, दूसरे कुलीन, लड़का बुद्धिमान् और शिक्षित, पैतृक सम्पत्ति अधिक। यदि इनमें नाता हो जाय तो क्या पूछना। चटपट रीति के अनुसार सन्देश कहला भेजा।

इस प्रकार संयोग ने आज उस विधैले वृक्ष का बीज बोया, जिसने

तीन ही वर्ष में कुल का सवनाश कर दिया। भविष्य हमारी दृष्टि से कैसा गुप्त रहता है ?

ज्यों ही संदेशा पहुँचा, सास, ननद और बहू में बातें होने लगीं।

बहू (चन्द्रा)—क्यों अम्मा ! क्या आप इसी साल व्याहा करेंगी ?

प्रेमवती—और क्या, तुम्हारे लालाजी के मानने की देर है।

बहू—कुछ तिलक-दहेज भी ठहरा ?

प्रेमवती—तिलक-दहेज ऐसी लड़कियों के लिए नहीं ठहराया जाता। जब तुला पर लड़की लड़के के बराबर नहीं ठहरती, तभी दहेज का पासङ्ग बनाकर उसे बराबर कर देते हैं। हमारी वृजराजी कमला बहुत भारी है।

सेवती—कुछ दिनों घर में खूब धूमधाम रहेगी। भाभी गीत गायँगी। हम ढोल बजायँगे। क्यों भाभी ?

चन्द्रा—मुझे नाचना-गाना नहीं आता।

चन्द्रा का स्वर कुछ भदा था, जब गाती, स्वर भङ्ग हो जाता था। इसलिए उसे गाने से चिढ़ थी।

सेवती—यह तो तुम आप ही कहो। तुम्हारे गाने की तो संसार में धूम है।

चन्द्रा जल गई, तीखी होकर बोली:—जिसे नाच-गाकर दूसरों को लुभाना हो वह नाचना-गाना सीखे।

सेवती—तुम तो तनिक सी हँसी में रूठ जाती हो। जरा वही गीत गाओ तो। 'तुम तो श्याम बड़े बेखबर हो।' इस समय सुनने को बहुत जी चाहता है। महीनों से तुम्हारा गान नहीं सुना !

चन्द्रा—तुम्हीं गाओ, कोयल की तरह कूकती हो।

सेवती—ले अब तुम्हारी यही चाल अच्छी नहीं लगती। मेरी अच्छी भाभी, तनिक गाओ।

चन्द्रा—मैं इस समय न गाऊँगी ! क्या मुझे कोई डोमनी समझ लिया है ?

सेवती—मैं तो बिना गीत सुने आज तुम्हारा पीछा न छोड़ूँगी।

सेवती का स्वर परम सुरीला और चित्ताकर्षक था। रूप और आकृति भी मनोहर, कुन्दन वरण और रसीली आँखें, पियाजी रङ्ग की साड़ी उसपर खूब खिल रही थी। वह आप ही आप गुनगुनाने लगी:—तुम तो श्याम बड़े बेखबर हो... तुम तो श्याम आप तो श्याम पीओ दूधके कुल्हड़, मेरी तो पानी पै गुजर— पानी पै गुजर हो। तुम तो श्याम०।

दूध के कुल्हड़ पर वह हँस पड़ी। प्रेमवती भी मुसकुराई, परन्तु चन्द्रा रुष्ट हो गई। बोली,—‘विना हँसीकी हँसी हमें नहीं भाती। इसमें हँसने की क्या बात है?’

सेवती—आओ हम-तुम मिलकर गायें।

चन्द्रा—कोयल और कौवे का क्या साथ ?

सेवती—क्रोध तो तुम्हारी नाक पर रहता है।

चन्द्रा—तो हमें क्यों छेड़ती हो। हमें गाना नहीं आता तो कोई तुमसे निन्दा करने तो नहीं जाता ?

‘कोई’ का संकेत राधाचरणकी ओर था। चन्द्रा में चाहे और गुण न हों, परन्तु पति की सेवा वह तन-मन से करती थी। उनका तनिक भी शिर धमका कि, इसका प्राण निकला। उनको घर आने में तनिक देर हुई कि यह व्याकुल होने लगी। जत्र से वे रुड़की चले गये, तब से चन्द्रा का हँसना-बोलना सब छूट गया था। उसका विनोद उनके सङ्ग चला गया था। इन्हीं कारणों ने राधाचरण को स्त्री का वशीभूत बना दिया था। प्रेम रूप, गुण आदि सब त्रुटियों का पूरक है।

सेवती—निन्दा क्यों करेगा, ‘कोई’ तो तन-मन से तुझ पर रीझा हुआ है।

चन्द्रा—इधर कई दिन से चिट्ठी नहीं आई।

सेवती—तीन-चार दिन हुए होंगे।

चन्द्रा—तुम से तो हाथ-पैर जोड़ के हार गई। तुम लिखती ही नहीं।

सेवती—अब वे ही बातें प्रतिदिन कौन लिखे, कोई नई बात हो तो लिखने को जी भी चाहे ।

चन्द्रा—आज विवाह के समाचार लिख देना । लाऊँ कलम दावात ?

सेवती—परन्तु एक शर्त पर लिखूँगी ।

चन्द्रा—बताओ ।

सेवती—तुम्हें श्यामवाला गीत गाना पड़ेगा ।

चन्द्रा—अच्छा गा दूँगी । हँसने ही को जी चाहता है न ? हँस लेना ।

सेवती—पहिले गा दो तो लिखूँ ।

चन्द्रा—न लिखोगी । फिर बातें बनाने लगोगी ।

सेवती—तुम्हारी शपथ लिख दूँगी, गाओ ।

चन्द्रा गाने लगीः—

तुम तो श्याम बड़े बेखबर हो ।

तुम तो श्याम पीओ दूधके कुल्हड़, मेरी तो पानी पै गुजर, पानी पै गुजर हो ।

तुम तो श्याम बड़े बेखबर हो ।

अन्तिम शब्द कुछ ऐसे वेसुर से निकले कि हँसी का रोकना कठिन हो गया । सेवती ने बहुत रोका पर न रुक सकी । हँसते हँसते पेट में बल पड़ पड़ गये । चन्द्रा ने दूसरा पद गया,—

आप तो श्याम रक्खो दो दो लुगइयाँ,

मेरी तो आपी पै नजर, आपी पै नजर, हो ।

तुम तो श्याम ॥

‘लुगइयाँ’ पर सेवती हँसते हँसते लोट गई । चन्द्रा ने सजल नेत्र होकर कहाः—‘आप तो बहुत हँस चुकी, लाऊँ कागज ?’

सेवती—नहीं, नहीं अभी तनिक हँस लेने दो ।

सेवती हँस रही थी कि, बाबू कमलाचरण का बाहर से शुभागमन हुआ । पन्द्रह-सोलह वर्षकी आयु थी । गोरा गोरा गेहुआं रंग । छरहरा शरीर, हँसमुख, भड़काले वस्त्रों से शरीर को अलंकृत किये, इत्र में बसे, नेत्रों में सुरमा, अधर पर मुसकान, और हाथ में बुलबुल

लिये आकर चारपाई पर बैठ गये। सेवती बोली:—‘कमलू! मुँह मीठा कराओ तो तुम्हें ऐसे शुभ समाचार सुनायें कि सुनते ही फड़क उठो।’

कमला—मुँह तो तुम्हारा आज अवश्य ही मीठा होगा। चाहे शुभ-समाचार सुनाओ चाहे न सुनाओ। आज इस पट्टे ने वह विजय प्राप्त की है कि, लोग दंग रह गये।

यह कहकर कमलाचरण ने बुलबुल को अँगूठे पर बिठा लिया।

सेवती—मेरी खबर सुनते ही नाचने लगोगे।

कमला—तो अच्छा है आप न सुनाइए। मैं तो आज यों ही नाच रहा हूँ। इस पट्टे ने आज नाक रख ली। सारा नगर दङ्ग रह गया। नवाब मुन्नेखाँ बहुत दिनों से मेरी आँखों पर चढ़े हुए थे। एक मास होता है, मैं उधर से निकला, तो आप कहने लगे,—‘मियाँ, कोई पट्टा तैयार हो तो लाओ, दो दो चोचें हो जायें।’ यह कहकर आपने अपना पुराना बुलबुल दिखाया। मैंने कहा—‘कृपानिधान, अभी तो नहीं, परन्तु एक मास में यदि ईश्वर चाहेगा तो आप से अवश्य एक जोड़ होगी, और बद्-बद् कर।’ आज आगा शेरअली के अखाड़े में बदान की ठहरी। पचास-पचास रुपये की बाजी थी। लाखों मनुष्य जमा थे। उनका पुराना बुलबुल, विश्वास मानो सेवती, कबूतर के बराबर था। परन्तु जिस समय यह पट्टा चला है तो इसकी उठी हुई गर्दन, मतवाली चाल और गठीलेपन पर लोग धन्य-धन्य करने लगे। जाते ही जाते इसने उसका टेढ़वा लिया। परन्तु वह भी केवल फूला हुआ न था। सारे नगर के बुलबुलों को पराजित किये बैठा था। बलपूर्वक लात चलाई। इसने बार-बार वचाया और फिर झपटकर उसकी चोटी दबाई। उसने फिर चोट की। यह नीचे आया; चतुर्दिक् कोलाहल मच गया, मार लिया, मार लिया। तब तो मुझे भी क्रोध आया, झपटकर जो ललकारता हूँ तो यह ऊपर और वह नीचे दबा हुआ है। फिर तो उसने कितना ही सिर पटक़ा कि, ऊपर आ जाय, परन्तु इस शेर ने ऐसा दावा कि, सिर न उठाने दिया। नवाब साहब

स्वयं उपस्थित थे। बहुत चिल्लाये, पर क्या हो सकता है ? इसने उसे ऐसा दबोचा था जैसे बाज चिड़िया को; आखिर बागदूट भागा। इसने पाली के उस पार तक पीछा किया, पर न पा सका। लोग विस्मय से दंग हो गये। नवाब साहब का तो मुख मलिन हो गया। हवाईयाँ उड़ने लगीं। रुपये हारने की तो उन्हें कुछ चिन्ता नहीं। क्योंकि लाखों की आय है। परन्तु नगर में जो उनकी धाक बैठी हुई थी, वह जाती रही। रोते हुए घर को सिधारे। सुनता हूँ, यहाँ से जाने ही, उन्होंने अपने बुलबुल को जीवित ही गाड़ दिया। यह कहकर कमलाचरण ने जेब खनखनाई।

सेवती—तो फिर खड़े क्या कर रहे हो ? आगरेवाले की दूकान पर आदमी भेजो।

कमला—तुम्हारे लिए क्या लाऊँ भाभी ?

सेवती—दूध के कुल्हड़।

कमला—और भय्या के लिए ?

सेवती—दो दो लुगाइयाँ।

यह कहकर दोनों ठट्ठा मार हँसने लगे।

(७)

निटुरता और प्रेम

सुवामा तन-मन से विवाह की तैयारियाँ करने लगी। भोर से संध्या तक विवाह ही के धन्धों में उलझी रहती। मुंशीला चैरी की भाँति उसकी आज्ञा का पालन किया करती। मुंशी संजीवनलाल प्रातःकाल से साँझ तक हाट की धूल छानते रहते। और विरजन जिसके लिए यह सब तैयारियाँ हो रही थीं, अपने कमरे में बैठी हुई रात-दिन रोया करती। किसी को इतना अवकाश भी न था कि, क्षण भर के लिए उसका मन बहलाये। यहाँ तक कि, प्रताप भी अब उसे निटुर जान पड़ता था। प्रताप का मन भी इन दिनों बहुत ही मलिन हो गया था। सबरे का

निकला हुआ सौँझ को घर आता और अपनी मुँडेर पर चुपचाप जा बैठता। विरजन के घर जाने की तो उसने शपथ सी कर ली थी। वरन जब कभी वह आती हुई दिखाई देती, तो चुपके-से सरक जाता। यदि कहने सुनने में बैठता भी तो कुछ इस भाँति मुख फेर लेता, और ऐसी रुखाई का व्यवहार करता कि, विरजन गंने लगती और सुवामा से कहती:—‘चर्चा ! लल्लू मुझसे रुष्ट हैं। मैं बुलाती हूँ तो नहीं बोलते। तुम चलकर मना दो।’ यह कहकर वह मचल जाती और सुवामा का आँचल पकड़कर खींचती हुई प्रताप के घर जाती। परन्तु प्रताप दोनों को देखते ही निकल भागता। वृजराणी द्वार तक यह कहती हुई आती कि—‘लल्लू तनिक सुन लो, तनिक सुन लो, तुम्हें हमारी शपथ; तनिक सुन लो।’ पर जब वह न सुनता और न मुँह फेरकर देखता ही तो बेचारी लड़की पृथ्वी पर बैठ जाती, और भली भाँति फूट-फूट-कर रोती और कहती—‘ये मुझसे क्यों रुठे हुए हैं ? मैंने तो इन्हें कभी कुछ नहीं कहा।’ सुवामा उसे छाती से लगा लेती और समझाती:—‘बेटा ! जाने दो, लल्लू पागल हो गया है।’ उसे अपने पुत्र की निठुरता का भेद कुछ कुछ ज्ञात हो चला था।

निदान विवाह को केवल पाँच दिन रह गये। नातेदार और सम्बन्धी लोग, दूर तथा समीप से आने लगे। आँगन में सुन्दर मण्डप छा गया। हाथ में कङ्कन बाँध गया। यह कच्चे धागे का कङ्कन पवित्र धर्म की हथकड़ी है, जो कभी हाथ से न निकलेगी, और मण्डप उस प्रेम और कृपा की छाया का स्मारक है, जो जीवन पर्यन्त शिर से न उठेगी। आज सन्ध्या को सुवामा, सुशीला, महाराजिनें सबकी सब मिलकर देवी की पूजा करने को गईं। महरियाँ अपने धन्धों में लगी हुई थीं। विरजन व्याकुल होकर अपने घर में से निकली और प्रताप के घर आ पहुँची। चतुर्दिक् सन्नाटा छाया हुआ था। केवल प्रताप के कमरे में धुँधला प्रकाश झलक रहा था। विरजन कमरे में आई, तो क्या देखती है कि मेज पर लालटेन जल रहा है और प्रातप एक चारपाई पर सो रहा है। धुँधले उजाले में उसका वदन कुम्हलाया हुआ और मलिन नजर

आता है। वस्तुएँ सब इधर-उधर बेढंग पड़ी हुई हैं। जमीन पर मनो धूल चढ़ी हुई है। पुस्तकें फैली हुई हैं। ऐसा जान पड़ता है कि, इस कमरे को किसी ने महीनों से नहीं खोला। यह वही प्रताप है, जो स्वच्छता को प्राणप्रिय समझता था। विरजन ने चाहा उसे जगा दूँ। पर कुछ सोचकर भूमि से पुस्तकें उठा-उठाकर आल्मारी में रखने लगी। मेज़ पर से धूल झाड़ी, चित्रों पर से गर्द का परदा उठा दिया। अचानक, प्रताप ने करवट ली और उसके मुख से यह वाक्य निकला:—‘विरजन ! मैं तुम्हें भूल नहीं सकता।’ फिर थोड़ी देर पश्चात्—‘विरजन ! विरजन ! कहाँ जाती हो, यहीं बैठा ?’ फिर करवट बदलकर—‘न बैठोगी ? अच्छा जाओ ! मैं भी तुमसे न बोलूँगा।’ फिर कुछ ठहरकर—‘अच्छा जाओ, देखें कहाँ जाती हो ?’ यह कहकर वह लपका, जैसे किसी भागते हुए मनुष्य को पकड़ता हो। विरजन का हाथ उसके हाथ में आ गया। उसके साथ ही आँखें खुल गईं। एक मिनट तक उसकी भाव-शून्य दृष्टि विरजन के मुख की ओर गड़ी रही। फिर वह चौँककर उठ बैठा, और विरजन का हाथ छोड़कर बोला:—‘तुम कब आई ?’ विरजन ! मैं अभी तुम्हारा ही स्वप्न देख रहा था।’

विरजन ने बोलना चाहा, परन्तु कण्ठ रुँध गया और आँखें भर आईं। प्रताप ने इधर-उधर देखकर फिर कहा,—‘क्या यह सब तुमने साफ़ किया ? तुम्हें बड़ा कष्ट हुआ।’ विरजन ने इसका भी कुछ उत्तर न दिया।

प्रताप—‘विरजन ! तुम मुझे भूल क्यों नहीं जाती ?’ विरजन ने आर्द्र नेत्रों से देखकर कहा:—‘क्या तुम मुझे भूल गये ?’

प्रताप ने लज्जित होकर मस्तक नीचा कर लिया। थोड़ी देर तक दोनों भावों से भरे भूमि की ओर ताकते रहे। फिर विरजन ने पूछा:—‘तुम मुझसे क्यों रुष्ट हो ? मैंने कोई अपराध किया है ?’

प्रताप—न जाने क्यों अब तुम्हें देखता हूँ तो जी चाहता है कि, कहीं चला जाऊँ।

विरजन—क्या तुमको मेरी तनिक भी छोट नहीं लगती ? मैं दिन

भर रोया करती हूँ। तुम्हें मुझपर दया नहीं आती? तुम मुझमे बोलते तक नहीं। बतलाओ मैंने तुम्हें क्या कहा कि, तुम रुठ गये?

प्रताप—मैं तुममे रुठा थोड़े ही हूँ।

विरजन—तो मुझमे बोलते क्यों नह ?

प्रताप—मैं चाहता हूँ कि, तुम्हें भूल जाऊँ। तुम धनवान हो, तुम्हारे माता-पिता धनी है, मैं अनाथ हूँ। मेरा तुम्हारा क्या साथ?

विरजन—अब तक तो तुमने कभी यह बहाना न निकाला था, क्या अब मैं अधिक धनवान हो गई ?

यह कहकर विरजन रोने लगी। प्रताप भी द्रवित हुआ। बोला:—विरजन ! हमारा तुम्हारा बहुत दिनों तक साथ रहा। अब वियोग के दिन आ गये। थोड़े दिनों में तुम यहाँवालों को छोड़कर अपने समुद्राल चली जाओगी। उस समय मुझे अवश्य ही भूल जाओगी। इसलिए मैं भी चाहता हूँ कि तुम्हें भूल जाऊँ। परन्तु कितना ही चाहता हूँ कि, तुम्हारी बातें स्मरण में न आवें, वे नहीं मानती। अभी सोते सोते तुम्हारा ही स्वप्न देख रहा था।

सखियाँ ।

डिप्पी श्यामाचरण का भवन आज सुन्दरियों के जमघट से इन्द्र का अखाड़ा बना हुआ था। मेघनी की चार सहेलियाँ, रुक्मिणी, सीता, रामदेई और चन्द्रकुंवर, सोलहों सिंगार किये अटलाती फिरती थी। डिप्पी साहब की बहिन जानकी कुंवर भी अपनी दो लड़कियों के साथ इटावे से आ गई थीं। इन दोनों का नाम कमला, और उमादेवी था। कमला का विवाह हो चुका था। उमादेवी अभी कुंवारी थी, दोनों सूर्य, और चंद्र थीं। मण्डप के तले डोमनियाँ और गवनिहारिनें, सोहर और सोहाग अलाप रही थीं, गुलबिया नाइन और जमुनी कहारी दोनों चटकीली साड़ियाँ पहिने, माँग सिंदूर से भरवाये, गिलट के कड़े पहिने, छम-छम करती फिरती थीं। गुलबिया चपला नवयौवना थी। जमुनी

की अवस्था ढल चुकी थी। सेवती का क्या पृष्ठना ? आज उसकी अनोखी छटा थी। रसीली आँखें आमोदाधिक्य से मतवाली हो रही थीं। और गुलाबी साड़ी की झलक से चम्पई रङ्ग गुलाबी जान पड़ता था। धानी मखमल की कुरती उसपर खूब खिलती थी। अभी स्नान करके आई थी, इसलिए नागिन की-सी लटे कंधों पर लहरा रही थी। छेड़छाड़ छोर चुटुल से इतना अवकाश भी न मिलता था कि, वाल गुँथवा ले। महाराजिन की बेटी माधवी छींट का सुन्दर लहंगा पहिने-आँखों में काजल लगाये, भीतर-बाहर एक किये हुए थी।

रुक्मिणी ने सेवती से कहा:—‘सिन्धो ! तुम्हारी भावज कहाँ हैं ? दिखाई नहीं देती। क्या हम लोगों से भी पर्दा है ?’

रामदेई—(मुसकुराकर) परदा क्या नहीं है ? हमारी नजर न लग जायगी।

सेवती—कमरे में पड़ी सो रही होंगी। देखो अभी खींचे लाती हूँ।

यह कहकर वह चन्द्रा के कमरे में पहुँची। वह एक साधारण साड़ी पहिने चारपाई पर पड़ी द्वार की ओर टकटकी लगाये हुए थी। इसे देखते ही उठ बैठी। सेवती ने कहा:—‘यहाँ क्या पड़ी हो, अकेले तुम्हारा जी नहीं घबराता ?’

चन्द्रा—‘उँह, कौन जाय, अभी कपड़े नहीं बदले।’

सेवती—तो बदलती क्यों नहीं ? सखियाँ तुम्हारी बाट देख रही हैं।

चन्द्रा—अभी मैं न बदलूँगी।

सेवती—यही हठ तुम्हारी अच्छी नहीं लगती। सब अपने मन में क्या कहती होंगी ?

चन्द्रा—तुमने तो चिट्ठी पढ़ी थी, आज ही आने को लिखा था न

सेवती—अच्छा तो यह उनकी प्रतीक्षा हो रही है, यह कहिए तभी योग साधा है।

चन्द्रा—दो पहर तो हुई स्यात् अब न आयेंगे।

इतने में कमला और उमादेवी दोनों आ पहुँचीं। चन्द्रा ने धूँघट

निकाल लिया और फर्श पर आ बैठी। कमला उसकी बड़ी ननद होती थी।

कमला—अरे, अभी तो इन्होंने कपड़े भी नहीं बदले।

सेवती—भय्या की बात जोह रही है। इस लिए यह भेष रचा है।

कमला—मूर्ख हैं। उन्हें गरज होगी आप आयेंगे।

सेवती—इनकी बात निराली है।

कमला—पुरुषों से प्रेम चाहे कितना ही करे, पर मुख से एक शब्द भी न निकाले, नहीं तो व्यर्थ सताने और जलाने लगते हैं। यदि तुम उनकी उपेक्षा करो, उनसे सीधे बात न करो, तो वे तुम्हारा सब प्रकार आदर करेंगे। तुम पर प्राण समर्पण करेंगे, परन्तु व्यो ही उन्हें ज्ञान हुआ कि अब इसके हृदय में मेरा प्रेम हो गया। वस उसी दिन से दृष्टि फिर जायगी। सैर को जायेंगे तो अब डर देर करके आयेंगे। भोजन करके बैठेंगे तो मुँह खोल करके उठ जायेंगे। बात बात पर रुठेंगे। तुम रोओगी तो मनायेंगे, मन में प्रसन्न होंगे कि, कैसा फंदा डाला है। तुम्हारे सम्मुख अन्य स्त्रियों की प्रशंसा करेंगे। भावार्थ यह कि, तुम्हारे जलाने में उन्हें आनन्द आने लगेगा। अब मेरे ही घर में देखो, पहिले इतना आदर करते थे कि, क्या बताऊँ। प्रतिक्षण नौकरों की भौति हाथ बाँधे खड़े रहते थे। पंखा झलने को तैयार, हाथ से कौर खिलाने को तैयार, यहाँ तक कि (मुमकुराकर) पाँव दाबने से भी सङ्कोच न था। बात मेरे मुख से निकली नहीं कि, पूरी हुई। मैं उस समय अवोध थी। पुरुषों के कपट-व्यवहार का जानूँ? पट्टी में आ गई। सेवती झूठ न मानना, उसी दिन से उनकी आँखें फिर गईं। लगे सैर-सपाटे करने। एक दिन रुठकर चल दिये। गजरा गले में डाले, इत्र लगाये आधी रात को घर आये। जानते थे कि, आज हाथ बाँधकर खड़ी होगी, मैंने लम्बी तानी तो रात भर करवट न ली। दूसरे दिन भी न बोली। अन्त में महाशय सीधे हुए, पैरों पर गिरे, गिड़गिड़ाये। तब से मैंने इस बात की गाँठ बाँध ली है कि, पुरुषों को प्रेम कभी न जताओ।

सेवती—जीजा को मैंने देखा है। भय्या के विवाह में आये थे। चढ़े हैंसमुख मनुष्य हैं।

कमला—पार्वती उन दिनों पेट में थी, इसी से मैं न आ सकी थी। यहाँ से गये तो लगे तुम्हारी प्रशंसा करने। तुम कभी पान देने गई थीं ? कहते थे कि, मैंने हाथ थामकर बैठा लिया ; और खूब बातें हुईं ।

मेवती—झूठे हैं, लवारिये हैं। बात यह हुई कि, गुलबिया और जमुनी दोनों किसी कार्य से बाहर गई थीं। मा ने कहा, वे स्वाकर गये हैं, पान बना के दे आ। मैं पान लेकर गई, चारपाई पर लेटे थे, मुझे देखते ही उठ बैठे। मैंने पान देने को हाथ बढ़ाया, तो आप कलाई पकड़कर कहने लगे कि एक बात सुन लो, एक बात सुन लो। पर मैं हाथ छुड़ाकर भागी।

कमला—निकली न झूठी बात। वही तो मैं भी कहूँ कि, अर्भी ग्यारह-बारह वर्ष की छोकरी, उसने इनसे क्या बातें की होगी ? परन्तु नहीं, अपना ही हठ किये जायँ। पुरुष बड़े प्रलापी होते हैं मैंने यह कहा, मैंने वह कहा। मेरा तो इन बातों से हृदय सुलगता है। न जाने उन्हें अपने ऊपर झूठा दोष लगाने में क्या स्वाद मिलता है। मनुष्य जो बुरा-भला करता है, उसपर परदा डालता है। ये लोग करेंगे तो थोड़ा, पर मिथ्या प्रलाप का आल्हा गाते फिरेंगे ज्यादा। मैं तो तभी से उनकी एक बात भी सत्य नहीं मानती।

इतने में गुलबिया ने आकर कहा—‘तुम तो यहाँ ठाढ़ी बतलात हो। और तुम्हारी सखी तुमकाँ आँगन में बुलौती हैं।’

सेवती—देखो भाभी, अब देर न करो। गुलबिया, तनिक इनकी पिटारी से कपड़े तो निकाल ले।

कमला चंद्रा का शृंगार करने लगी। सेवती सहेलियों के पास आई। रुक्मिणी बोली—‘वाह बहिन, खूब ! वहाँ जाकर बैठ रही ; तुम्हारी दीवारों से वोलेँ क्या ?’

सेवती—कमला बहिन चली गई। उनसे बातचीत होने लगी। दोनों आ रही हैं।

रुक्मिणी—लड़करी हैं न ?

सेवती—हाँ तीन लड़के हैं।

रामदेई—मगर काठी बहुत अच्छी है।

चन्द्रकुँवर—मुझे उनकी नाक बहुत सुन्दर लगती है, जी चाहता है छीन लें।

सीता—दोनों बहिनें एक से एक बढ़कर हैं।

सेवती—सीता को ईश्वर ने वर अच्छा दिया है, इसने सोने की गौर पूजा थी।

रुक्मिणी—(जलकर) गोर चमड़े से कुछ नहीं होता।

सीता—तुम्हें काला ही भाता होगा।

सेवती—मुझे काला वर मिलता तो विष खा लेती।

रुक्मिणी—यो कहने को जो चाहे कह लो; परन्तु वास्तव में ~~अस~~ काले ही वर से मिलता है।

सेवती—सुख नहीं धूल मिलती है। ग्रहण-सा आकर लिपट जाता होगा।

रुक्मिणी—यही तो तुम्हारा लड़कपन है। तुम जानती नहीं, सुन्दर पुरुष अपने ही बनाव सिंगार में लगा रहता है। उसे अपने आगे स्त्री का कुछ ध्यान ही नहीं रहता। यदि स्त्री परम रूपवती हो तो कुशल है। नहीं तो थोड़े ही दिनों में उससे भागने लगता है। वह समझता है कि मैं ऐसी दूसरी स्त्रियों के हृदय पर सुगमता से अधिकार पा सकता हूँ। बेचारा काला और कुरूप पुरुष सुन्दर स्त्री पा जाता है, तो समझता है कि, मुझे हीरे की खान मिल गई। अपने रूप की कमी को वह प्यार और आदर से पूरी करता है। उसके हृदय में ऐसी धुकधुकी लगी रहती है कि, मैं तनिक भी इससे खट्टा पड़ा तो वह मुझसे घृणा करने लगेगी।

चन्द्रकुँवर—दूल्हा सबसे अच्छा वह जो मुँह से बात निकलते ही पूरी करे।

रामदेई—तुम अपनी बात न चलाआ। तुम्हें तो अच्छे-अच्छे गहनों से प्रयोजन है। दूल्हा कैसा ही हो ?

सीता—न जाने कोई अपने पुरुष से किसी वस्तु की आज्ञा कैसे करता है। क्या संकोच नहीं होता ?

रुक्मिणी—तुम वपुरी क्या आज्ञा करोगी, कोई बात भी तो पूछे ?

सीता—मेरी तो उन्हें देखने ही से तृप्ति हो जाती है। वस्त्राभूषणों पर जी ही नहीं चलता।

इतने में एक और सुन्दरी आ पहुँची, गहने से गूँहनी की भाँति लदी हुई। बढ़िया जूती पहिने, सुगन्ध में बसी, आँखों में चपलता बरस रही थी।

रामदेई—आओ रानी, आओ, तुम्हारी ही कमी थी।

रानी—क्या कः, निगोड़ी नाइन से किसी प्रकार पीछा नहीं छूटता था। कुसुम की मा आई तब जाके जूड़ा बँधा।

सीता—तुम्हारी जाकिट पर बलिहारी है।

रानी—इसकी कथा मत पूछो ! कपड़ा दिये एक मास हुआ। दस बारह बार दरजी सीकर लाया। पर कभी आम्तीन ढीली कर दी। कभी सीयन बिगाड़ दी, कभी चुनाव बिगाड़ दिया। अभी चलते-चलते दे गया है।

यही बातें हो रही थीं कि, माधवी चिल्लाती हुई आई,—‘भैया आये, भैया आये, उनके संग जीजा भी आये हैं, ओहो ! ओहो !’

रानी—राधाचरण आये क्या ?

सेवती—हाँ ! चलँ तनिक भाभी को सन्देश दे आऊँ ! क्यों रे ! कहाँ बैठे हैं ?

माधवी—‘उसी बड़े कमरे में। जीजा पगड़ी बाँधे हैं। भैया कोट पहिने हैं, मुझे जीजा ने रुपया दिया।’ यह कहकर उसने मुट्ठी खोलकर दिखाई।

रानी—सित्तो ! अब मुँह मीठा कराओ।

सेवती—क्या मैंने कोई मनौत की थी ?

यह कहती हुई सेवती चन्द्रा के कमरे में जाकर बोली,—‘लो भाभी ! तुम्हारा सगुन ठीक हुआ।’

चन्द्रा—क्या आ गये ? तनिक जाकर भीतर बुला लो ।

सेवती—हाँ मर्दाने में चला जाऊँ, तुम्हारे वहनोई जी भी तो पधारे हैं ।

चन्द्रा—बाहर बैठे क्या कर रहे है ? किसी को भेजकर बुला लेती, नहीं तो दूसरों से बातें करने लगेंगे ।

अचानक खड़ाऊँ का शब्द सुनाई दिया और राधाचरण आते दिखाई दिये । आयु चौबीस-पच्चीस वरस में अधिक न थी । बड़े ही हंसमुख, गौर वर्ण, अंग्रेजी काट के बाल, फ्रेच काट की दाढ़ी, खड़ी मूँछें, लवडंग की लपटे आ रही थीं । एक पतला रेशमी कुर्ता पहने हुए थे । आकर पलंग पर बैठ गये, और सेवती से बोले,—‘क्यों सित्ता ! एक सप्ताह में चिट्ठी नहीं भेजी ?’

सेवती—मैंने सोचा अब तो आ ही रहे हो, क्यों चिट्ठी भेजूँ ?
 वह कहकर वहाँ से हट गई । चन्द्रा ने ध्रुवट उठाकर कहा—‘वहाँ जाकर भूल जाते हो ?’

राधाचरण—(हृदय से लगाकर) नहीं, तो सैंकड़ों कोस से चला आ रहा हूँ ।

[९]

ईर्ष्या

प्रतापचन्द्र ने विरजन के घर आना-जाना विवाह के कुछ दिन पूर्व ही से त्याग दिया था । वह विवाह के किसी भी कार्य में सम्मिलित नहीं हुआ । यहाँ तक कि महफिल में भी न गया । मलिन मन किये, मुँह लटकाये, अपने घर बैठा रहा । मुंशी संजीवनलाल, सुशीला, सुवामा सब विनती करके हार गये । पर उसने बारात की आर दृष्ट भी न फेरी । अन्त में मुंशीजी का मन टूट गया, और फिर कुछ न बोले । यह दशा विवाह के होने तक थी । विवाह के पश्चात् तो उसने उधर का मार्ग ही त्याग दिया । स्कूल जाता तो इस प्रकार एक ओर से

निकल जाता, मानो आगे कोई बाध बैठा हुआ है या जैसे महाजन से कोई ऋणी मनुष्य आँख बचाकर निकल जाता है। विरजन की तो परछाई से भागता। यदि कभी उसे अपने घर में देख पाता तो भीतर पग न देता। माता समझाती, बेटा ! तुम विरजन से बोलते-चालते क्यों नहीं हो ? क्यों उससे मन मोटा किये हुए हो ? वह आ आकर घण्टों रोती है कि, मैंने क्या किया है, जिसमें वे रुष्ट हो गये। देखो तुम और वह बितने दिनों तक एक संग रहे हो। तुम उसे कितना प्यार करते थे। अकस्मात् तुमको क्या हो गया ? यदि तुम ऐसे ही रुठे रहोगे तो बेचारी लड़की की जान पर बन जायगी। सुखकर काँटा हाँ गई है। ईश्वर जानता है, मुझे उसे देखकर करुणा उत्पन्न होती है। तुम्हारी चर्चा के अतिरिक्त उसे कोई बात ही नहीं भाती। प्रताप आँखें नीची किये हुए यह सब सुनता और चुपचाप सरक जाता। प्रताप अब भोला बालक नहीं था। उसके जीवनरूपी वृक्ष में यौवनरूपी कोपल फूट रही थीं। उसने बहुत दिनों से—उसी समय से जबसे उसने सँभाला—विरजन के जीवन को अपने जीवन में शर्कराक्षीर की भाँति मिला लिया था। उन मनोहर और सुहावने स्वरों का इस कठोरता और निर्दयता से धूल में मिलाया जाना उसके कोमल हृदय को विदीर्ण करने के लिए काफी था। वह—जो अपने विचारों में विरजन को अपना सर्वस्व समझता था—कहीं वा न रहा। और वह—जिसने विरजन को एक पल के लिये भी अपने ध्यान में स्थान न दिया था—उसका सर्वस्व हो गया। इस वितर्क से उसके हृदय में व्याकुलता उत्पन्न होती थी। और जी चाहता था कि, जिन लोगों ने मेरी स्वप्नवत् भावनाओं का नाश किया है और मेरे जीवन की आशाओं को मिट्टी में मिलाया है, उन्हें मैं भी जलाऊँ और सुलगाऊँ। सबसे अधिक क्रोध उसे जिस पर आता था वह बेचारी सुशीला थी।

शनैः शनैः उसकी यह दशा हो गई कि, जब स्कूल से आता तो कमलाचरण के सम्बन्ध की कोई घटना अवश्य वर्णन करता। विशेष कर उस समय, जब सुशीला भी बैठी रहती। उस बेचारी का मन

दुखाने में इसे बड़ा ही आनन्द आता। यदि मिथ्या भाषण से उसे घृणा थी, जो कुछ कहता, सत्य ही कहता था, तथापि अव्यक्त रीति से उसका कथन और वाक्यगति ऐसी हृदय-भेदिनी होती थी कि, मुशीला के कलेजे में तीर की भाँति लगती थी। आज महाशय कमलाचरण तिपाई के ऊपर खड़े थे, मस्तक गगनस्पर्श करता था। परन्तु निर्लज्ज इतने बड़े कि, जब मैंने उनकी ओर संकेत किया तो खड़े खड़े हँसने लगे। आज बड़ा तमाशा हुआ। कमल ने एक लड़के की घड़ी उड़ा दी। उसने मास्टर से शिकायत की। उसके समीप ये ही महाशय बैठे हुए थे। मास्टर ने खोज की तो आप ही के फेंटे में से घड़ी मिली। फिर क्या था? बड़े मास्टर के यहाँ रिपोर्ट हुई। वे सुनते ही झल्ला गये। और कोई तीन दर्जन बेंतें लगाये सड़ासड़। सारा स्कूल यह कुतूहल देख रहा था। जब तक बेंतें पड़ा कीं, महाशय चिल्लाया किये. परन्तु बाहर निकलते ही खिलखिलाने लगे; और मूछों पर ताव देने लगे। चची! नहीं मुना? आज लड़कों ने ठीक स्कूल के फाटक पर कमलाचरण को पीटा। मारते मारते बेसुध कर दिया। मुशीला ये बातें सुनती और सुन-सुनकर कुढ़ती। हाँ, प्रताप ऐसी बोर्ड बात विर-जन के सामने न करता। यदि वह घर में बैठी भी होती, तो जब तक वह चली न जाती, यह चर्चा न छेड़ता। वह चाहता था कि, मेरी किसी बात से इसे कुछ दुःख न हो।

समय समय पर मुन्शी संजीवनलाल ने भी कई बार प्रताप की कथाओं की पुष्टि की। कभी कमला हाट में बुलबुल लगते मिल जाता, कभी गुण्डों के संग सिगरेट पीते, पान चबाते, बेदंगेपन में घूमता हुआ दिखाई देता। मुन्शीजी जब जामाता की यह दशा देखते तो घर आते ही स्त्री पर क्रोध निकालते, — 'यह सब तुम्हारी ही करतूत है। तुम्हीं ने कहा था, घर-घर दोनों अच्छे हैं, तुम्हीं रीझी हुई थीं।' उन्हें उस क्षण यह विचार न होता कि, जो दोपारोपण मुशीला पर है, कम से कम, मुझपर भी उतना ही है। वह बेचारी तो घर में बन्द रहती थी, उसे क्या ज्ञान था कि, लड़का कैसा है। वह सामुद्रिक विद्या थोड़ी

ही पढ़ी थी। उसके माता-पिता को सभ्य देखा, उनकी कुलीनता और वैभव पर सहमत हो गई। पर मुन्शीजी ने तो केवल अकर्मण्यता और आलस्य के कारण छानवीन न की। यद्यपि उन्हें इसके अनेक अवसर प्राप्त थे, और मुन्शीजी के अगणित बान्धव इसी भारतवर्ष में अब भी विद्यमान हैं जो अपनी प्यारी कन्याओं को इसी प्रकार नेत्र वन्द करके कूँ मे ढकेल दिया करते हैं।

मुशीला के लिए विरजन से प्रिय जगत में अन्य वस्तु न थी। विरजन उसका प्राण थी, विरजन धर्म थी, और विरजन ही उसका सत्य थी। वही उसका प्राणाधार थी, वही उसके नयनों की ज्योति और हृदय का उत्साह थी। उसकी सर्वोच्च सांसारिक अभिलाषा यह थी कि, मेरी प्यारी विरजन अच्छे घर जाय। इसके सास-ससुर देवी-देवता हों, उसका पति शिष्टता की मूर्ति और श्रीरामचन्द्रजी की भाँति मुशील हो, उसपर किसी कष्ट की छाया भी न पड़े। उसने मर-मरकर बड़ीं मिन्नतों से यह पुत्री पाई थी, और उसकी इच्छा थी, कि रसीले नयनोंवाली, अपनी भोली भोली वाला को अपने मरण पथ आँखों से अदृश्य न होने दूँगी। अपने जामाता को भी यहीं बुलाकर अपने घर रखूँगी। विरजन के बच्चे होंगे। उनका पोषण करूँगी। जामाता मुझे माता कहेगा, मैं उसे लड़का समझूँगी। जिस हृदय में ऐसे मनोरथ हों, उसपर ऐसी दारुण और हृदयविदारिणी बातों का जो कुछ प्रभाव पड़ेगा, प्रकट है।

हा ! हन्त !! दीना मुशीला के सारे मनोरथ मिट्टी में मिल गये। उसकी सारी आशाओं पर ओस पड़ गई। क्या सोचती थी और क्या हो गया। अपने मन को बार बार समझाती कि, अभी क्या है; जब कमला सयाना हो जायगा तो सब बुराइयाँ स्वयं त्याग देगा। पर एक निन्दा का घाव भरने नहीं पाता था कि, फिर कोई नवीन घटना सुनने में आ जाती। इसी प्रकार, आघात पर आघात पड़ते गये। हाय ! नहीं मालूम विरजन के भाग्य में क्या बदा है ? क्या यह गुन की मूर्ति, मेरे घर की दीप्ति, मेरे शरीर का प्राण इसी

दुष्प्रकृति, मनुष्य के संग जीवन व्यतीत करेगी ? क्या मेरी डायमा इसी गिद्ध के पाले पड़ेगी ? यह सोचकर सुशीला रोने लगती और घण्टो रोती । पहिले विरजन को कभी कभी डाँट-डपट भी दिया करती थी । अब भूलकर भी कोई बात न कहती । उसका मुँह देखते ही उसे याद आ जाती । एक क्षण के लिए भी उसे सामने से अहश्य न होने देती । यदि ज़रा देर के लिए वह सुवामा के घर चली जाती तो स्वयं पहुँच जाती । उसे ऐसा प्रतीत होता मानो कोई उसे छीनकर ले भागता है । जिस प्रकार बधिक की छुरी के तले अपने बड़ड़े का देखकर गाय का रोम-रोम काँपने लगता है, उसी प्रकार विरजन के दुःख का ध्यान करके सुशीला की आँखों में संसार मृना जान पड़ता था । इन दिनों विरजन को पल भर के लिए नेत्रों से दूर करते उसे वह कष्ट और व्याकुलता होती थी, जो चिड़िया को घोंसले से बच्चों के खो जाने पर होती है ।

सुशीला एक तो यों ही जीर्ण रोगिनी थी । उसपर भविष्य की असाध्य चिन्ता और जलन ने उसे और भी घुला डाला । निन्दाओं ने कलेजा चलनी कर डाला । छः मास भी न बीतने पाये थे कि, क्षय-रोग के चिह्न दिखाई देने लगे । प्रथम तो कुछ दिनों तक साहस करके अपने दुःख को छिपाती रही, परन्तु कब तक ? रोग बढ़ने लगा और शक्तिहीन हो गई । चारपाई से उठना कठिन हो गया । वैद्य और डॉक्टर औषध करने लगे । विरजन और सुवामा दोनों रातदिन उसके पास बैठी रहतीं । विरजन एक पल के लिए उसकी दृष्टि से ओझल न होने पाती । उसे अपने निकट न देखकर सुशीला बेसुध-सी हो जाती और फूट-फूटकर रोने लगती । मुंशी संजीवनलाल पहिले तो धैर्य के साथ दवा करते रहे । पर जब देखा कि, किसी उपाय से कुछ लाभ नहीं होता, और बीमारी की दशा दिन-दिन निकृष्ट होती जाती है, तो अन्त में उन्होंने भी निराश हो उद्योग और साहस कम कर दिया । आज से कई साल पहले जब सुवामा बीमार पड़ी थी, तब सुशीला ने उसकी सेवा । शुश्रूषा में पूर्ण परिश्रम किया था, अब सुवामा

की बारी आई। उसने पड़ोसी और भगिनी के धर्म का पालन भली भाँति किया। रुग्णसेवा में अपने गृहकार्य को भूल-सी गई। दो-दो तीन-तीन दिन तक प्रताप से बोलने की नौबत न आती। बहुधा वह बिना भोजन किये ही स्कूल चला जाता। परन्तु कभी कोई अप्रिय शब्द मुख से न निकालता। सुशीला की रुग्णावस्था ने अब उसकी द्वेपाग्नि को बहुत कम कर दिया था। द्वेप की अग्नि द्वेष्टा की उन्नति और मुदशा के साथ-साथ तीव्र और प्रज्वलित होती जाती है और उसी समय शान्त होती है, जब द्वेष्टा के जीवन का दीपक बुझ जाता है।

जिस दिन वृजराजी को ज्ञात हो जाता कि, आज प्रताप बिना भोजन किये स्कूल जा रहा है, उस दिन वह सब काम छोड़कर उसके घर दौड़ जाती, और भोजन करने के लिए आग्रह करती। पर प्रताप उसमें जात तक न करता, उसे रोते छोड़ बाहर चला जाता। निस्सन्देह वह विरजन को पूर्णतः निर्दोष समझता था; परन्तु एक ऐसी सम्बन्ध को जो वर्ष छः मास में टूट जानेवाला हो, वह पहिले ही से तोड़ देना चाहता था। एकान्त में बैठकर वह आप ही आप फूट-फूटकर रोता, परन्तु प्रेम के उद्वेग को अधिकार से बाहर न होने देता।

एक दिन वह स्कूल से आकर अपने कमरे में बैठा हुआ था कि विरजन आई। उसके कपोल अश्रु से भीगे हुए थे और लम्बी लम्बी सिसकियाँ ले रही थी। उसके मुख पर इस समय कुछ ऐसी निराशा छाई हुई थी और उसकी दृष्टि कुछ ऐसी करुणात्पादक थी कि प्रताप में रहा न गया। सजलनयन होकर बोला—“क्यों विरजन ! रो क्यों रही हो ?” विरजन ने कुछ उत्तर न दिया, वरन और विलक-विलककर रोने लगी। प्रताप का गाम्भीर्य जाता रहा। वह निस्सङ्कोच होकर उठा और विरजन की आँखों से आँसू पोंछने लगा। विरजन ने स्वर संभालकर कहा:—“लल्लू ! अब माता न जीयेंगी, मैं क्या करूँ ?” यह कहते कहते वह फिर सिसकियाँ भरने लगी।

प्रताप यह समाचार सुनकर स्तब्ध हो गया। दौड़ा हुआ विरजन के घर गया और सुशीला की चारपाई के समीप खड़ा होकर रोने लगा।

हमारा अन्त समय कैसा धन्य होता है ? वह हमारे पास ऐसे ऐसे अहितकारियों को खींच लाता है, जो कुछ दिन पूर्व हमारा मुख नहीं देखना चाहते थे और जिन्हें इस शक्ति के अतिरिक्त संसार की कोई अन्य शक्ति पराजित न कर सकती थी। हाँ यह समय ऐसा ही बलवान् है और बड़े बड़े बलवान् शत्रुओं को हमारे अधीन कर देता है। जिन पर हम कभी विजय न प्राप्त कर सकते थे, उनपर हमको यह समय विजयी बना देता है। जिन पर हम किसी शस्त्र से अधिकार न पा सकते थे, उनपर समय शरीर के शक्तिहीन हो जाने पर भी हमको विजयी बना देता है। आज पूरे वर्ष भर के पश्चात् प्रताप ने इस घर में पदार्पण किया। मुशीला की आँखें बन्द थीं, पर मुखमण्डल ऐसा विकसित था, जैसे प्रभातकाल का कमल। आज भोर ही से वह रट लगाये हुए थी, कि, लल्लू को दिखा दो। सुवामा ने इसी लिए विरजन को भेजा था।

सुवामा ने कहा:—‘वहिन ! आँखें खोलो। लल्लू खड़ा है।’ मुशीला ने आँखें खोल दीं और दोनों हाथ प्रेम-बाहुल्य में फैला दिये। प्रताप के हृदय में विरोध का अन्तिम चिह्न भी विलीन हो गया। यदि ऐसे काल में भी कोई मत्सर का मैल रहने दे तो वह मनुष्य कहलाने का हकदार नहीं है। प्रताप सच्चे पुत्रत्व भाव से आगे बढ़ा और मुशीला के प्रेमाङ्क में जा लिपटा। दोनों आध घण्टे तक रोते रहे। मुशीला उसे अपनी दोनों बांहों से इस प्रकार दबाये हुए थी मानों वह कहीं भागा जा रहा है। वह इस समय अपने को सैकड़ों अधिकार दे रहा था कि, मैं ही इस दुश्मिया का प्राणहारी हूँ। मैंने ही द्वेष दुरावेग के वशीभूत होकर इसे इस गति को पहुँचाया है। मैं ही इस प्रेम की मूर्त का नाशक हूँ। ज्यों ज्यों यह भावना उसके मन में उठती, उसकी आँखों से आँसू बहते। निदान मुशीला बोली:—‘लल्लू ! अब मैं दो-एक दिन की और महमान हूँ। मेरा जो कुछ कहा-सुना हा वह क्षमा करो।’ प्रताप का स्वर उसके वश में न था, इसलिए उसने कुछ उत्तर न दिया।

सुशीला फिर बोली —‘न जाने क्यों तुम मुझसे रुष्ट हो। तुम हमारे घर नहीं आते। हमसे बोलते नहीं। जी तुम्हें प्यार करने को तरस-तरसकर रह जाता है। पर तुम मेरी तनिक भी सुध नहीं लेते। बताओ अपनी दुखिया चर्ची से क्यों रुष्ट हो? ईश्वर जानता है; मैं तुमको सदा अपना लड़का समझती रही। तुम्हें देखकर मेरी छाती फूल उठती थी।’ यह कहते कहते निर्वलता के कारण उसकी बोली धीमी हो गई। जैसे क्षितिज के अथाह विस्तार में उड़नेवाले पक्षी की बोली प्रतिक्षण मध्यम होती जाती है। यहाँ तक कि, उसके शब्द का ध्यान मात्र शेष रह जाता है। इसी प्रकार सुशीला की बोली धीमी होते होते केवल साये साये रह गई।

(१०)

सुशीला की मृत्यु

तीन दिन और बीते, सुशीला के जीने की अब कोई संभावना न रही। तीनों दिन मुंशी संजीवनलाल उसके पास बैठे उसको सान्त्वना देते रहे। वह तनिक देर के लिए भी वहाँ से किसी काम के लिए चले जाते तो वह व्याकुल होने लगती और रो-रोकर कहने लगती:—‘मुझे छोड़कर कहीं चले गये।’ उनको नेत्रों के सम्मुख देखकर भी उसे संतोष न होता। रह-रहकर उतावलेपन से उनका हाथ पकड़ लेती और निराश भाव से कहती,—‘मुझे छोड़कर कहीं चले तो नहीं जाओगे?’ मुंशीजी यद्यपि बड़े दृढ़चित्त मनुष्य थे। पर ऐसी बातें सुनकर आर्द्रनेत्र हो जाते। थोड़ी थोड़ी देर में सुशीला को मूच्छा-सी आ जाती। फिर चौंकती तो इधर उधर भौंचक्की-सी देखने लगती। वे कहाँ गये? क्या छोड़कर चले गये? किसी किसी बार मूच्छा का इतना प्रकोप होता कि, मुंशीजी बार बार कहते कि,—‘मैं यहीं हूँ घबड़ाओ नहीं।’ पर उसे विश्वास न आता। उन्हीं की ओर ताकती और पूछती कि,—‘कहाँ हैं? यहाँ तो नहीं हैं। कहाँ चले गये?’

थोड़ी देर में जब चेत हो जाता तो चुप रह जाती और रोने लगती। तीनों दिन उसने विरजन, सुवामा, प्रताप एक की भी मुच न की। वे सबके सब हर घड़ी उसके पास खड़े रहते, पर ऐसा जान पड़ता था कि, वह मुंशीजी के अतिरिक्त और किसी को पहचानती ही नहीं है। जब विरजन बेचैन हो जाती और उसके गले में हाथ डालकर रोने लगती, तो वह तनिक आँखें खोल देती और पूछती;—‘कौन है विरजन?’ वस और कुछ न पूछती। जैसे मृत्यु के हृदय में मरते समय अपने गड़े हुए धन के विवाय और किसी वान का ध्यान नहीं रहता, उसी प्रकार हिन्दू स्त्री अपने अन्त समय में पनि के अतिरिक्त और किसी का ध्यान नहीं कर सकती।

कभी-कभी सुशीला चौंक पड़ती और विस्मित होकर पूछती,—‘अरे! यह कौन खड़ा है? यह कौन भागा जा रहा है? उन्हें क्यों ले जाते हैं? ना मैं न जाने दूँगी!’ यह कहकर मुंशीजी के दोनों हाथ पकड़ लेती। एक पल में जब होश आ जाता तो लज्जित होकर कहती,—‘मैं सपना देख रही थी, जैसे कोई तुम्हें लिये जा रहा था। देखो तुम्हें हमारा सौह है। कहीं जाना नहीं। न जाने कहाँ ले जायगा, फिर तुम्हें कैसे देखूँगी?’ मुंशीजी का कलेजा मनोमन लगता। उसकी ओर अनि करुणा भरी स्नेहदृष्टि डालकर बोली,—‘नहीं मैं न जाऊँगा। तुम्हें छोड़कर कहाँ जाऊँगा?’ सुवामा उसकी दगा देखती और रोती कि, अब यह दीपक बुझा ही चाहता है। अवस्था ने उसकी लज्जा दूर कर दी थी। मुंशीजी के सम्मुख घण्टों मुँह खोलकर खड़ी रहती।

चौथे दिन सुशीला की दशा संभल गई। मुंशीजी को विश्वास हो गया। वस यह अन्तिम समय है। दीपक बुझने से पहिले भभक उठता है। प्रातःकाल जब मुँह धोकर वे घर में आये, तो सुशीला ने संकेत द्वारा उन्हें अपने पास बुलाया और कहा:—‘मुझे अपने हाथ से थोड़ा-सा पानी पिला दो।’ आज वह सचेत थी। उसने विरजन, प्रताप, सुवामा सबको भली-भाँति पहिचाना। वह विरजन को बड़ी देर तक

छाती से लगाये रोती रही। जब पानी पी चुकी तो सुवामा से बोली:—
 ‘बहिन ! तनिक हमको उठाकर बिठा दो, स्वामीजी के चरण छू लूँ।
 फिर न जाने कब इन चरणों के दर्शन होंगे ?’ सुवामा ने रोते हुए
 अपने हाथों से सहारा देखकर उसे तनिक सा उठा दिया। प्रताप और
 विरजन सामने खड़े थे। सुशीला ने मुंशीजी से कहा—‘मेरे समीप
 आ जाओ।’ मुंशीजी प्रेम और करुणा से विह्वल होकर उसके गले से
 लिपट गये और गद्गद स्वर से बोले:—‘घबराओ नहीं, ईश्वर चाहेगा
 तो तुम अच्छी हो जाओगी।’ सुशीला ने निराश भाव से कहा:—
 ‘हाँ आज अच्छी हो जाऊँगी। जरा अपना पैर बढ़ा दो। मैं माथे
 लगा लूँ।’ मुंशीजी हिचकिचाते रहे। सुवामा रोते हुए बोली—‘पैर
 बढ़ा दीजिए, इनकी इच्छा पूरी हो जाय।’ तब मुंशीजी ने चरण बढ़ा
 दिये। सुशीला ने उन्हें दोनों हाथों से पकड़कर कई बार चूमा। फिर
 उनपर हाथ रखकर रोने लगी। थोड़ी ही देर में दोनों चरण उष्ण
 जलकड़ों से भींग गये। पतिव्रता स्त्री ने प्रेम के मोती पति के चरणों
 पर निछावर कर दिये। जब आवाज़ सँभली तो उसने विरजन का
 एक हाथ थापकर मुंशीजी के हाथ में दिया और अति मन्द स्वर से
 कहा:—‘स्वामीजी ! आपके संग बहुत दिन रही और जीवन का परम
 सुख भोगा। अब प्रेम का नाता टूटता है। अब मैं पल-भर की ओर
 अतिथि हूँ। प्यारी विरजन को तुम्हें सौंप जाती हूँ। मेरा यही चिह्न
 है। इसपर सदा दया-दृष्टि रखना। मेरे भाग्य में प्यारी पुत्री का सुख
 देखना नहीं बढ़ा था। इसे मैंने कभी कोई कड़ा वचन नहीं कहा, कभी
 कठोर दृष्टि से नहीं देखा। यह मेरे जीवन का फल है। ईश्वर के लिए
 तुम इसकी ओर से वसुध न हो जाना।’ यह कहते-कहते हिचकियाँ बँध
 गई और मूर्च्छा-सी आ गई।

जब कुछ अवकाश हुआ तो उसने सुवामा के सम्मुख हाथ जोड़े
 और रोकर कहा:—‘बहिन ! विरजन तुम्हारे समर्पण है। तुम्हीं उसकी
 माता हो। लल्लू ! प्यारे ! ईश्वर करे तुम जुग जुग जीओ। अपनी
 विरजन को भूलना मत। वह तुम्हारी दीना और मातृहीना बहिन है।

तुममें उसके प्राण बसते हैं। उसे रूठाना मत, उसे कुढ़ाना मत, उसे कभी कठोर वचन मत कहना। उससे कभी न रूठना। उसकी ओर से वेसुध न होना, नहीं तो वह रो-रोकर प्राण दे देगी। उसके भाग्य में न जाने क्या वदा है, पर तुम उसे अपनी सगी बहिन समझकर सदा ढारम देते रहना। मैं थोड़ी ही देर में तुम लोगों को छोड़कर चली जाऊँगी, पर तुम्हें मेरी सौह, उसकी ओर से मन मोटा न करना, तुम्हीं उसका बेड़ा पार लगाओगे। मेरे मन में बड़ी बड़ी अभिलाषाएँ थीं, मेरी लालसा थी कि, तुम्हारा व्याह करूँगी, तुम्हारे बच्चे को खिलाऊँगी। पर भाग्य में कुछ और ही वदा था।

यह कहते कहते वह फिर अचेत हो गई। सारा घर शर रहा था। महारियाँ, महाराजिनें सब उसकी प्रशंसा कर रही थीं कि, स्त्री नहीं देवी थी।

रधिया—इतने दिन टहल करते हुए पर कभी कठोर वचन न कहा।

महाराजिन—हमको बेटी की भाँति मानती थी, भोजन कैसा ही बनाके रख दें, पर कभी नाराज नहीं हुई। जब बात करती मुसकुरा के। महाराज जब आते तो उन्हें जल्द सीधा दिलवाती थीं।

सब इसी प्रकार की बातें कर रहे थे। दोपहर का समय हुआ। महाराजिन ने भोजन बनाया; परन्तु खाता कौन? बड़े हठ करने पर मुंशीजी गये और नाम करके चले आये। प्रताप चौंके पर गया भी नहीं। विरजन और सुवामा को भूख कहाँ? सुशीला कभी विरजन को प्यार करती, कभी सुवामा को गले लगाती, कभी प्रताप को चूमती और कभी अपनी बीती कह-कहकर रोती। तीसरे पहर उसने सब नौकरों को बुलाया, और उनसे अपराध क्षमा कराया। जब वे सब चले गये तब सुशीला ने सुवामा से कहा:—‘बहिन, प्यास बहुत लगती है। उनसे कह दो अपने हाथ से थोड़ा सा पानी पिला दें।’ मुंशीजी पानी लाये। सुशीला ने कठिनता से एक घूँट पानी कण्ठ से नीचे उतारा और ऐसा प्रतीत हुआ, मानों किसी ने उसे अमृत पिला दिया। उसका मुख उज्ज्वल हो गया। आँखों में जल भर आया। पति के गले

मैं हाथ डालकर बोली:—‘मैं ऐसी भाग्यशालिनी हूँ कि तुम्हारी गोद में मरती हूँ ।’ यह कहकर वह चुप हो गई । मानों कोई बात कहना चाहती है, पर सझोच से नहीं कहती । थोड़ी देर पश्चात् उसने फिर मुंशीजी का हाथ पकड़ लिया और कहा:—‘यदि तुमसे कुछ माँगू तो दोगे ?’

मुंशीजी ने विस्मित होकर कहा—‘तुम्हारे लिए माँगने की आवश्यकता है ? निःसझोच कहो ।’

मुशीला—तुम मेरी बात कभी नहीं टालते थे ।

मुंशीजी—मरते दम तक कभी न टालूँगा !

मुशीला—डर लगता है कहीं न मानो तो...

मुंशीजी—तुम्हारी बात और मैं न मानूँ ?

मुशीला—मैं तुमको न छोड़ूँगी । एक बात बतला दो- सिल्लो (मुशीला) मर जायगी तो उमे भूल जाओगे ?

मुंशीजी—ऐसी बातें न कहो, देखो विरजन रोती है ।

मुशीला—बतलाओ मुझे भूलोगे तो नहीं ?

मुंशीजी—कभी नहीं ।

मुशीला ने अपने मृत्यु कपोल मुंशीजी के अधरों पर रख दिये और दोनों बाहें उनके गले में डाल दीं । फिर विरजन को निकट बुलाकर धीरे-धीरे समझाने लगी—‘देखो बेटी ! लालाजी का कहना हर घड़ी मानना, उनकी भेवा मन लगाकर करना । गृह का सारा भार अब तुम्हारे ही माथे है । अब तुम्हें कौन सँभालेगा ?’ यह कहकर उसने स्वामी की ओर करुणापूर्ण नेत्रों से देखा और कहा—‘मैं अपने मन की बात नहीं कहने पाई, जी झूठा जाता है ।’

मुंशीजी—तुम व्यर्थ अममंजस में पड़ी हो ।

मुशीला—तुम मेरे हो कि नहीं ?

मुंशीजी—तुम्हारा और आमरण तुम्हारा ।

मुशीला—ऐसा न कहो कि तुम मुझे भूल जाओ और जो वस्तु मेरी थी, वह अन्य के हाथ में चली जाय ।

मुंशीजी—(संकेत समझकर) इसकी चर्चा ही क्यों करती हो ? जब तक जीऊंगा, तुम्हारा ही रहूंगा ।

मुशीला ने विरजन को फिर बुझाया और उसे वह छाती से लगाना चाहती थी कि, मूर्छित हो गई । विरजन और प्रताप राने लगे । मुंशीजी ने काँपते हुए मुशीला के हृदय पर हाथ रखा । साँस धीरे-धीरे चल रही थी । महाराजिन को बुलाकर कहा—‘अब इन्हें भूमि पर लिटा दो ।’ यह कहकर राने लगे । महाराजिन और मुशामा ने मिलकर मुशीला को पृथ्वी पर लिटा दिया । तपेदिक ने हड्डियाँ तक सुखा डाली थीं ।

अंधेरा हो चला था । सारे गृह में शोकमय और भयावह सन्नाटा छाया हुआ था । रोनेवाले रोते थे पर कण्ठ बाँध-बाँधकर । बातें होती थीं पर दवे स्वरों से । मुशीला भूमि पर पड़ी हुई थी । वह मुकुमार अङ्ग जो कभी माता के अङ्ग में पला, कभी प्रेमाङ्ग में पौड़ा, कभी फूलों की मेज पर सोया, इस समय भूमि पर पड़ा हुआ था । अभी तक नाड़ी मन्द-मन्द गति से चल रही थी ; मुंशीजी शोक और निराशानन्द में मग्न उसके शिर की ओर बैठे हुए थे । अकस्मात् उसने शिर उठाया और दोनों हाथों से मुंशीजी का चरण पकड़ लिया । प्राण उड़ गये । दोनों कर उनके चरण का मण्डल बाँधे ही रहे । यह उसके जीवन की अन्तिम क्रिया थी ।

रानेवाले ! रोओ ! क्योंकि, तुम रोने के अतिरिक्त कर ही क्या सकते हो ? तुम्हें इस समय कोई कितनी ही सान्त्वना दे, पर तुम्हारे नेत्र अश्रु-प्रवाह को न रोक सकेंगे । रोना तुम्हारा कर्तव्य है । जीवन में रोने के अवसर कदाचित् ही मिलते हैं । क्या इस समय तुम्हारे नेत्र शुष्क हो जायेंगे ? आँसुओं के तार बँधे हुए थे, सिसकियों के शब्द आ रहे थे कि, महाराजिन दीपक जलाकर घर में लाई । थोड़ी ही देर पहिले मुशीला के जीवन का दीपक बुझ चुका था ।

[११]

विरजन की विदा

राधाचरण रुड़की कॉलेज से निकलते ही मुरादाबाद के इंजीनियर नियुक्त हुए और चन्द्रा उनके संग मुरादाबाद को चली। प्रेमवती ने बहुत रोकना चाहा पर जानेवाले को कौन रोक सकता है? सेवती कब की ससुराल जा चुकी थी। यहाँ घर में अकेली प्रेमवती रह गई। उसके सिर घर का काम-काज पड़ा। निदान यह राय हुई कि, विरजन के गौने का सन्देशा भेजा जाय। डिप्टी साहब सहमत न थे, परन्तु घर के कामों में प्रेमवती ही की बात चलती थी।

संजीवनलाल ने सन्देशा स्वीकार कर लिया, कुछ दिनों से वे तीर्थ-यात्रा का विचार कर रहे थे। उन्होंने क्रम क्रम से सांसारिक सम्बन्ध त्याग कर दिये थे। दिन भर घर में आसन मारे भगवद्गीता और योगवाशिष्ठ आदि ज्ञान सम्बन्धिनी पुस्तकों का अध्ययन किया करते। सन्ध्या होते ही गङ्गा-स्नान को चले जाते। वहाँ से रात्रि गये लौटते और थोड़ा-सा भोजन करके सो जाते। प्रायः प्रतापचन्द्र भी उनके संग गंगा-स्नान को जाता। यद्यपि उसकी आयु सोलह वर्ष की भी न थी पर कुछ तो निज स्वभाव, कुछ पैतृक संस्कार और कुछ संगति के प्रभाव से उसे अभी से वैज्ञानिक विषयों पर मनन और विचार करने में बड़ा आनन्द प्राप्त होता था। ज्ञान तथा ईश्वर-सम्बन्धिनी बातें सुनते-सुनते उसकी प्रवृत्ति भी भक्ति की ओर हो चली थी। और किसी किसी समय मुंशीजी से ऐसे सूक्ष्म विषयों पर विवाद करता कि वे विभिन्न हो जाते। वृजरानी पर सुवामा की शिक्षा का उससे भी गहरा प्रभाव पड़ा था, जितना कि, प्रतापचन्द्र पर मुंशीजी की संगति और शिक्षा का। उसका पन्द्रहवाँ वर्ष था। इस आयु में मन में नई उमंगें तरंगित होती हैं और चितवन में सरलता और चंचलता की जगह मनोहर रसीलापन बरसने लगता है। परन्तु वृजरानी अभी वही भोली-भाली बालिका थी। उसके मुख पर 'हृदय के पवित्र

भाव झलकते थे और वार्तालाप में मनोहारिणी मधुरता उत्पन्न हो गई थी। प्रातःकाल उठती और सबसे प्रथम मुंशीजीका कमरा साफ करके उनकी प्रजा-पाठ की सामग्री यथोचित रीति में रख देती। फिर रसेई के धंधे में लग जाती। दोपहर का समय उसके लिखने-पढ़ने का था। सुवामा पर उसका जितना प्रेम और जितनी श्रद्धा थी, उतनी अपनी माता पर भी न रही होगी। उसकी इच्छा विरजन के लिए आज्ञा से कम न थी।

सुवामा की तो सम्मति थी कि अभी विदाई न की जाय। पर मुंशीजी के हठ में विदाई की तैयारियाँ होने लगीं। ज्यों-ज्यों वह विपत्ति की घड़ी निकट आती, विरजन की व्याकुलता बढ़ती जाती थी। रात-दिन रोया करती। कभी पिता के चरणों पड़ती और कभी सुवामा के पदों में लिपट जाती। पर विवाही कन्या पराये घर की हो जाती है। उसपर किसी का क्या अधिकार ?

प्रतापचन्द्र और विरजन कितने ही दिनों तक भाई-बहन की भाँति एक साथ रहे। पर अब विरजन की आँखें उसे देखते ही नीचे को झुक जाती थीं। प्रताप की भी यही दशा थी। घर में बहुत कम आता था। आवश्यकतावश आता तो इस प्रकार की दृष्टि नीचे किये हुए और सिमटे हुए, मानो दुलहिन है। इसकी दृष्टि में वह प्रेमरहस्य छिपा हुआ था, जिसे वह किसी मनुष्य—यहाँ तक कि विरजन पर भी प्रकट नहीं करना चाहता था।

एक दिन सन्ध्या समय था। विदाई को केवल तीन दिन रह गये थे। प्रताप किसी काम से भीतर गया और अपने घर में लैम्प जलाने लगा कि, विरजन आई। उसका अंचल आँसुओं से भीगा हुआ था। उसने आज दो वर्ष के अनन्तर प्रताप की ओर सजल नेत्र से देखा और कहा:—‘लल्लू ! मुझसे कैसे सहा जायगा ?’

प्रताप के नेत्रों में आँसू न आये। उसका स्वर भारी न हुआ। उसने सुदृढ़ भाव से कहा:—‘ईश्वर तुम्हें धैर्य धारण की शक्ति देंगे।’ विरजन का सिर झुक गया। आँखें पृथ्वी में गड़ गईं और एक

सिसकी ने हृदय-वेदना की वह अगाध कथा वर्णन की जिसका होना वाणी द्वारा असम्भव था ।

विदाई का दिन लड़कियों के लिए कितना शोकमय होता है । बचपन की सब सखियाँ, सहेलियाँ, माता, पिता, भाई, बन्धु से नाता टूट जाता है । यह विचार कि, मैं फिर भी इस घर में आ सकूँगी, उसे तनिक भी संतोष नहीं देता । क्योंकि अब वह आयेगी तो अतिथि-भाव से आयेगी । उन लोगों से विलग होना जिनके साथ जीवनोद्यान में खेलना और स्वातन्त्र्य-वाटिका में भ्रमण करना उपलब्ध हुआ हो, उसके हृदय को विदीर्ण कर देता है । आज से उसके शिर पर ऐसा भार पड़ता है, जो आमरण उठाना पड़ेगा ।

विरजन का शृंगार किया जा रहा था । नाइन उसके हाथ पैरों में मँहदी रचा रही थी । कोई उसके बाल गुँथ रही थी । कोई जूड़े में सुगन्ध वसा रही थी । पर जिसके लिए ये तैयारियाँ हो रही थी, वह भूमि पर मोती के दाने बिखेर रही थी । इतने में बाहर से मन्देशा आया, मुहूर्त टला जाता है । जल्दी करो । सुवामा पास खड़ी थी । विरजन उसके गले लिपट गई और अश्रु-प्रवाह का आतंक जो अब तक दबी हुई अग्नि की नाईं सुलग रहा था, अकस्मान् पंसे भड़क उठा मानो किसी ने आग में तेल डाल दिया है ।

थोड़ी देर में पालकी द्वार पर आई । विरजन पड़ोस की स्त्रियों से गले मिली । सुवामा के चरण छूये तब, दो-तीन स्त्रियों ने उसे पालकी के भीतर बिठा दिया । उधर पालकी उठी, इधर सुवामा मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़ी । मानो उसके जीते ही कोई उसका प्राण निकालकर लिये जाता था । घर सूना हो गया । सैकड़ों स्त्रियों का जमघट था, परन्तु एक विरजन के बिना घर फाड़े खाता था ।

[१२]

कमलाचरण के मित्र

जैसे सिन्दूर की लालिमा से माँग रच जाती है, वैसे ही विरजन के आने से प्रेमवती के घर की रौनक बढ़ गई। सुवामा ने उसे ऐसे गुण मिखाये थे कि जिसने उसे देखा, मोह गया। यहाँ तक कि सेवती की सहेली रानी को भी प्रेमवती के सम्मुख रचीकार करना पड़ा कि, तुम्हारी छोटी बहू ने हम सभी का रंग फीका कर दिया। सेवती उससे दिन दिनभर बातें करती, और उसका जी न ऊबता। उसे अपने गाने पर अभिमान था, पर इस क्षेत्र में भी विरजन बाजी ले गई।

अब कमलाचरण के मित्रों ने आप्रह करना शुरू किया कि, भई नई दुलहिन घर में लाये हो, कुछ मित्रों की भी फिक्र करो। सुनते हैं परम सुन्दरी खी पाये हो, कमलाचरण को रुपये तो समुराल से मिले ही थे, जेब खनखनाकर बोले:—‘अर्जी दावन लो। शराबें उड़ाओ। हाँ बहुत शार-गुल न मचाना, नहीं तो कहीं भीतर खबर होगी तो समझेगे ये गुण्डे हैं। जवसे वह घर में आई हैं, मरे तो हाँश उड़े हुए हैं। सुनता हूँ, अंग्रेजी, फारसी, संस्कृत, अल्लम-गल्लम सभी घाटे बैठे हैं। डरता हूँ कहीं अंग्रेजी में कुछ पृष्ठ बैठे या फारसी में बातें करने लगीं तो मुँह ताकने के सिवाय और क्या करूँगा? इसलिए अभी जी बचाता फिरता हूँ।’

यों तो कमलाचरण के मित्रों की संख्या अपरिमित थी। नगर के जितने क्यूतरबाज कनकवेत्राज गुण्डे थे, सब उसके मित्र थे, परन्तु सब मित्रों में केवल पाँच महाशय थे। और सबके सभी फाकेमस्त छिछोरे थे। इनमें सबसे अधिक शिक्षित मियाँ मजीद थे। ये कचहरी में **भरायजनबीसौ** किया करते थे। जो कुछ मिलता, वह सब शराब की भेंट करते। दूसरा नंबर हमीदखाँ का था। इन महाशय ने बहुत पैतृक सम्पत्ति पाई थी, परन्तु तीन वर्ष में सब कुछ विलास में लुटा दी। अब यह ढंग था कि सायङ्काल को सज-धजकर गलियों में

धूल फाँकते फिरते थे। तीसरे हज़रत सय्यदहुसेन थे। पक्के जुआरी, नल के परम भक्त, सैकड़ों के दाव लगानेवाले, स्त्री के गहनों पर हाथ मँजना तो नित्य का इनका काम था। शेष दो महाशय रामसेवक-लाल और चन्दूलाल कचहरी में नौकर थे। वेतन कम, पर ऊपरी आम-दनी बहुत थी। आधी मुरापान की भेट करते, आधी भोग-विलास में उड़ाते। घर के लोग भूखे मरें या भिक्षा माँगें, इन्हें केवल अपने सुख से काम था।

सलाह तो हो चुकी थी, आठ बजे जब डिप्पी साहब लेंटे तो ये पाँचों जने एकत्रित हुए और शराब के दौर चलने लगे। पाँचों पीने में अभ्यस्त थे। जब नशे का रंग जमा तो बहक-बहककर बातें करने लगे।

मजीद—क्यों भाई कमलाचरण; सच कहना, स्त्री को देखकर जी खुश हो गया कि नहीं ?

कमला—अब आप बहकने लगे क्यों ?

रामसेवक—वतला क्यों नहीं देते, इसमें झपने की कौन-सी बात है ?

कमला—वतला क्या अपना सिर दे, कभी सामने जाने का संयोग भी तो हुआ हो। कल किवाड़ की दरार से एक बार देख लिया था, अभी तक चित्र आँखों पर फिर रहा है।

चन्दूलाल—मित्र, तुम बड़े भाग्यवान हो।

कमला—ऐसा व्याकुल हुआ कि, गिरते-गिरते बचा। बस परी समझ लो।

मजीद—तो भाई यह दोस्ती किस दिन काम आयेगी। एक नज़र हमें भी दिखाओ।

सय्यद—बेशक दोस्ती के यही मानी हैं कि, आपस में कोई पर्दा न रहे।

चन्दूलाल—दोस्ती में क्या पर्दा ? अंग्रेजों को देखो, बीबी डोली से उतरी नहीं कि यार-दोस्त हाथ मिलाने लगे।

रामसेवक—मुझे तो बिना देखे चैन न आयगा।

कमला—(एक धप लगाकर) जीभ काट ली जायगी, समझे ?

रामसेवक—कोई चिन्ता नहीं, आँखें तो देखने को रहेंगी ।

मजीद—भई कमलाचरण, बुरा मानने की बात नहीं, अब इस बक्त तुम्हारा फर्ज है कि, दोस्तों की फर्माइश पूरी करो ।

कमला—अरे तो मैं नहीं कब करता हूँ ?

चन्दूलाल—वाह ! मेरे शेर, ये ह मर्दों की-सी बातें हैं तो हम लोग वन-ठनकर आ जायें क्यों ?

कमला—जी जरा मुँद में कालिख लगा लीजिएगा । वस इतना बहुत है ।

सय्यद—तो आज ही ठहरी न ?

इधर तो शराब उड़ रही थी, उधर विरजन पलंग पर लेटी हुई विचार में मग्न हो रही थी । वृचपन के दिन भी कैसे अच्छे होते हैं । यदि वे दिन एक बार फिर आ जाते ! आह ! कैसा मनाहर जीवन था ! संसार प्रेम और प्रीति की खान था । क्या वह कोई अन्य संसार था ? क्या उन दिनों संसार की बन्तुणें बहुत सुन्दर होती थीं । इन्हीं विचारों में आँखें झपक गईं, और वचपन की एक घटना आँखों के सामने आ गई । लल्लू ने उसकी गुड़िया मरोड़ दी । उसने उसकी किताब के दो पन्ने फाड़ दिये । तब लल्लू ने उसकी पीठ में जोर से चुटकी ली, बाहर भागा । वह रोने लगी और लल्लू को कोस रही थी कि, सुवामा उसका हाथ पकड़े आई और बोली,—‘क्यों बेटा इसने तुम्हें मारा है न ? यह बहुत मार-मारकर भागता है । आज इसकी खबर लेती हूँ, देखूँ कहाँ मारा है ?’ लल्लू ने डबडवाई आँखों से विरजन की ओर देखा । तब विरजन ने मुसकुराकर कहा—‘मुझे इन्होंने कहाँ मारा—ये मुझे कभी नहीं मारते ।’ यह कहकर उसका हाथ पकड़ लिया । अपने हिस्से की मिठाई खिलाई, और फिर दोनों मिलकर खेलने लगे । वह समय अब कहाँ ?

रात्रि अधिक बीत गई थी; अचानक विरजन को जान पड़ा कि, कोई सामनेवाली दीवार धमधमा रहा है । उसने कान लगाकर सुना ।

बराबर शब्द आ रहे थे। कभी रुक जाते, फिर सुनाई देते। थोड़ी देर में मिट्टी गिरने लगी। डर के मारे विरजन के हाथ-पाँव फूलने लगे। कलेजा धक-धक करने लगा। जी कड़ा करके उठी और महाराजिन को झिझोड़ने लगी। धिग्वी बंधी हुई थी। इतने में मिट्टी का एक बड़ा ढेला सामने गिरा। महाराजिन चौंकर उठ बैठी। दोनों का विश्वास हुआ कि, चोर आये है। महाराजिन एक चतुर स्त्री थी। समझी कि, चिल्लाऊँगी तो जाग हो जायगी। उसने सुन रखा था कि, चोर पहिले सेंध में पाँव डालकर देखते हैं, तब आप घुसते हैं। उसने एक डण्डा उठा लिया कि, जब पैर डालेगा तो ऐसा ताककर मारूँगी कि टाँग टूट जायगी। पर चोर ने पाँव के स्थान पर सिर सेंध में से निकाला। महाराजिन घात में थी ही, डण्डा चला दिया। खटके की आवाज़ आई। चोर ने झट सिर खींच लिया। और यह कहता हुआ सुनाई दिया। 'उफ मार डाला, खोपड़ी भज्रा गई।' फिर कई मनुष्यों के हँसने की ध्वनि आई और तत्पश्चात् सन्नाटा हो गया। इतने में और लोग भी जाग पड़े और शेष रात्रि बातचीत में व्यतीत हुई।

प्रातःकाल जब कमलाचरण घर में आये तो नेत्र लाल थे और शिर में सूजन थी। महाराजिन ने निकट जाकर देखा, फिर आकर विरजन से कहा:—'बहू, एक बात कहूँ। बुरा तो न मानोगी !'

विरजन—बुरा क्यों मानूँगी, कहो क्या कहती हो ?

महाराजिन—रात जो सेंध पड़ी थी, वह चोरों ने नहीं लगाई थी।

विरजन—फिर कौन था ?

महाराजिन—घर ही के भेदी थे। बाहरी कोई न था।

विरजन—क्या किसी कहार की शरारत थी ?

महाराजिन—नहीं कहारों में ऐसा कोई नहीं है।

विरजन—फिर कौन था, स्पष्ट क्यों नहीं कहती ?

महाराजिन—मेरी जान में तो छोटे बाबू थे। मैंने जो लकड़ी मारी थी, वह उनके शिर में लगी। शिर फूला हुआ है।

इतना सुनते ही विरजन की भुकुटी चढ़ गई। मुखमण्डल अरुण

हो आया। क्रुद्ध होकर बोली—‘महाराजिन, होश सँभालकर बातें करो। तुम्हें यह कहने हुए लाज नहीं आती? तुम्हें मेरे सम्मुख ऐसी बात कहने का साहस हुआ? साक्षान्त मेरे ऊपर कलंक का टीका लगा रही हो! तुम्हारे बुढ़ापे पर दया आती है, नहीं तो अभी तुम्हें यहाँ से खड़े-खड़े निकलवा देती। तब तुम्हें विदित होता कि जीभ को बश में न रखने का क्या फल होता है। यहाँ से उठ जाओ, मुझे तुम्हारा मुँह देखकर ज्वर-सा चढ़ रहा है। तुम्हें इतना न समझ पड़ा कि, मैं कैसा वाक्य मुँह से निकाल रही हूँ। उन्हें ईश्वर ने क्या नहीं दिया है? सारा घर उनका है। मेरा जो कुछ है, उनका है। मैं स्वयं उनकी चेरी हूँ। उनके सम्बन्ध में तुम ऐसी बात कह पेंठी?’

परन्तु जिस बात पर विरजन इतनी क्रुद्ध हुई, उसी बात पर घर के और लोगों को विश्राम हो गया। डिण्टी सायब के कान में भी बात पहुँची। वे कमलाचरण को उससे अधिक दुष्ट प्रकृति समझने से जितना बच था। भय हुआ कि, कहीं यह महाशय बहू के गहनों पर न हाथ बढ़ायें। अच्छा हो कि, इन्हें छात्रालय में भेज दूँ। कमलाचरण ने यह उपाय सुना तो बहुत छटपटाया, पर कुछ सोचकर छात्रालय चला गया। विरजन के आगमन से पूर्व कई बार यह सलाह हुई थी। पर कमला के हठ के आगे एक भी न चलती थी। यह स्त्री की दृष्टि से गिर जाने का भय था, जो अक्की बार उसे छात्रालय ले गया।

[१३]

कायापलट

पहला दिन तो कमलाचरण ने किसी प्रकार छात्रालय में काटा। प्रातः से सायंकाठ तक सोया किये। दूसरे दिन ध्यान आया कि, आज नवाब साहब और तीखे भिर्जा के बटेरों में बड़ाऊ जोड़ है। कैसे-कैसे मस्त पड़े हैं। आज उनकी पकड़ देखने के योग्य होगी। सारा नगर फट पड़े तो आश्चर्य नहीं। क्या दिलगमी है कि, नगर के

लोग तो आनन्द उड़ायें और मैं पड़ा-पड़ा रोऊँ। यह सोचते-सोचते उठा और बात-की-बात में अखाड़े में था।

यहाँ आज बड़ी भीड़ थी। एक मेला-सा लगा हुआ था। भिश्ती छिड़काव कर रहे थे, सिगरेटवाले, खोमचेवाले और तम्बोली सब अपनी-अपनी दूकानें लगाये बैठे थे। नगर के मनचले युवक अपने हाथों में बटेर लिये या मखमली अड्डों पर बुलबुलों को बैठाये मटर-गश्त कर रहे थे। कमलाचरण के भित्रों की यहाँ क्या कमी थी? लोग उन्हें खाली हाथ देखते तो पूछते,—‘अरे राजा साहब! आज खाली हाथ कैसे?’ इतने में मियाँ सय्यद, मजीद, हमीद आदि नशे में चूर, सिगरेट के धुएँ भकाभक उड़ाने देख पड़े। कमलाचरण को देखते ही सब-के-सब सरपट दौड़े और उससे लिपट गये।

मजीद—आज तुम कहाँ गायब हो गये थे यार? कुरान की कसम, मकान के सैकड़ों चकर लगाये होंगे।

रामसेवक—आज कल आनन्द की रातें हैं भाई! आँखें नहीं देखते हो, नशा-सा चढ़ा हुआ है।

चन्द्रलाल—चैन कर रहा है पट्टा। जब से सुन्दरी घर में आई, उसने बाज़ार की सूरत तक नहीं देखी। जब देखिए घर में घुसा रहता है। खूब चैन कर ले यार!

कमला—चैन क्या खाक करूँ? यहाँ तो कैद में फँस गया। तीन दिन से बोर्डिंग में पड़ा हुआ हूँ।

मजीद—अरे! खुदा की कसम?

कमला—सच कहता हूँ, परसों से मिट्टी पलीद हो रही है। आज सबकी आँख बचाकर निकल भागा।

रामसेवक—खूब उड़े। वह मुछन्दर सुपरिण्टेण्डेण्ट झट्ला रहा होगा।

कमला—यह मारके का जोड़-छोड़ कर किताबों में सिर कौन मारता?

सैयद—यार, आज उड़ आये तो क्या? सच तो यह है कि तुम्हारा वहाँ रहना आफत है। रोज तो न आ सकोगे? और यहाँ आये दिन

नई सैरें, नई-नई बहारें ; कल लाल डिग्गी पर, परसों प्रेत पर, नरसों वेड़ों का मेला—कहाँ तक गिनाऊँ, तुम्हारा जाना बुरा हुआ ।

कमला—कल की कटाव तो मैं जरूर देखूँगा । बाहे इधर की दुनिया उधर हो जाय ।

सग्यद—और वेड़ों का मेला न देखा तो कुछ न देख ।

तीसरे पहर कमलाचरण मित्रों से विदा होकर उदास मन छात्रालय की ओर चला । मन में एक चोर-सा पैठा हुआ था । द्वार पर पहुँचकर झाँकने लगा कि, सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब न हो तो लपककर कमरे में हो रहूँ । यह देखता है तो वे भी बाहर ही की ओर आ रहे हैं । चित्त को भली भाँति दृढ़ करके भीतर पैठा । सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब ने पृछा—अब तक कहाँ थे ?

‘एक काम से बाज़ार चला गया था ।’

‘यह बाज़ार जाने का समय नहीं है ।’

‘मुझे ज्ञात नहीं था, अब ध्यान रखूँगा ।’ रात्रि को जब कमला चारपाई पर लेटा तो सोचने लगा,—यार आज तो बच गया, पर उत्तम तभी हो कि, कल बचूँ । और परमों भी महाशय की आँख में धूल डालूँ । कल का दृश्य वस्तुतः दर्शनीय होगा । पतंग आकाश से बातें करेंगे । और लम्बे-लम्बे पेंच होंगे । यह ध्यान करते-करते सो गया । दूसरे दिन प्रातःकाल छात्रालय से निकल भागा । मुहृद्गण लाल डिग्गी पर उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे । देखते ही गद्गद हो गये । और पीठ ठोकी ।

कमलाचरण कुछ देर तक तो कटाव देखता रहा । फिर शौक चर्चाया कि क्यों न मैं भी अपने कन्क्रीट मँगाऊँ, और अपने हाथों की सफाई दिखलाऊँ ? सग्यद ने भड़काया, बद-बदकर लड़ाओ । रुपया हम देंगे । चट घर पर आदमी दौड़ा दिया । पूरा विश्वास था कि, अपने माँझे से सबको परास्त कर दूँगा । परन्तु जब आदमी घर से खाली हाथ आया, तब तो उसकी देह में आग-सी लग गई । हण्टर लेकर दौड़ा, और घर पहुँचते ही कहारों को एक ओर से सटर-सटर

पीटना आरम्भ किया। वेचारे बैठे हुक्का-तमाखू कर रहे थे। निरपराध अचानक हण्टर पड़े तो चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगे। सारे मुहल्ले में एक कोलाहल मच गया। किसी की समझ ही में न आया कि हमारा क्या दोष है? यहाँ कहारों का भली भाँति सत्कार करके कमलाचरण अपने कमरे में पहुँचा। परन्तु वहाँ की दुर्दशा देखकर क्रोध और भी प्रज्वलित हो गया। पतंग फटे हुए थे, चखियाँ टूटी हुई थीं, माँझ की लच्छियाँ उलझी पड़ी थीं। मानो किसी आपत्ति ने इन यवन योद्धाओं का सत्यानाश कर दिया था। समझ गया कि अवश्य यह माताजी की करतूत है। क्रोध से लाठ माना के पास आया, और उच्च स्वर से बोला—‘क्यों मा! तुम सबमुच मेरे प्राण ही लेने पर आ गई हो। तीन दिन हुए कारागार में भिजवा दिया; पर इतने पर भी चित्त का सन्तोष न हुआ। मेरे विनोद की सामग्रियों को नष्ट कर डाला, क्यों?’

प्रेमवती—(विस्मय से) मैंने तो तुम्हारी कोई चीज नहीं छुई। क्या हुआ?

कमला—(विगड़का) झूठों के मुख में कीड़े पड़ते हैं। तुमने मेरी वस्तुएँ नहीं छुई, तो किसका माहम है जो मेरे कारों में जाकर मेरे कंकौत्रे और चखियाँ सब तोड़-फोड़ डाले? क्या इतना भी नहीं देखा जाता?

प्रेमवती—ईश्वर माफ़ी है। मैंने तुम्हारे कमरे में पाँव भी नहीं रखा। चलो देखूँ कौन-कौन चीजें टूटी हैं।

यह कहकर प्रेमवती तो इस कमरे की ओर चली और कमला क्रोध में भरा आँगन में खड़ा रहा कि, इतने में माधवी विरजन के कमरे से निकली, और उसके हाथ में एक चिट्ठी देकर चली गई। लिखा हुआ था:—

‘अपराध मैंने किया है। अपराधिनी मैं हूँ। जो दण्ड चाहें दीजिए।’

यह पत्र देखते ही कमला भीगी विल्ली बन गया और दबे पाँव बैठक की ओर चला। प्रेमवती पर्दे की आड़ से सिसकते हुए नौकरों

को डाँट रही थी, उसे मना किया और उसी क्षण कुछ और कन्कौवे जो बचे हुए थे, देखा कि कमलाचरण ने स्वयं फाड़ डाले, चर्खियाँ टुकड़े-टुकड़े कर डालीं और डोर में दियासलाई लगा दी। माता के ध्यान ही में नहीं आता था कि क्या बात है? कहाँ तो अभी-अभी इन्हीं वस्तुओं के लिए संसार शिर पर उठा लिया था और कहाँ आपही उनका शत्रु हो गया। समझी स्यान् क्रोध से ऐसा कर रहा हो। मनाने लगी पर कमला की आकृति से क्रोध तनिक भी प्रकट न होता था। स्थिरता से बोला:—‘मैं क्रोध में नहीं हूँ। आज से दृढ़ प्रतिज्ञा करता हूँ कि, पतंग कभी न उड़ाऊँगा। मेरी मूर्खता थी कि इन वस्तुओं के लिए आपसे झगड़ बैठा।’

जब कमलाचरण कमरे में अकेला रह गया तो सोचने लगा—निम्सन्देह मेरा पतंग उड़ाना उन्हें नापसन्द है, इससे हार्दिक घृणा है, नहीं तो मुझपर यह अत्याचार कदापि न करतीं। यदि एक बार उनसे भेट हो जाती तो पूछता कि, तुम्हारी क्या इच्छा है, पर कैसे मुँह दिखाऊँ? एक तो महा मूर्ख, तिसपर कई बार अपनी मूर्खता का परिचय दे चुका। संघवाली घटना की सूचना उन्हें अवश्य ही मिली होगी। उन्हें मुख दिखाने के योग्य नहीं रहा। अब तो यहाँ उपाय है कि, न तो उनका मुख देखूँ न अपना दिखाऊँ, या किसी प्रकार कुछ विद्या सीखूँ। हाय! इस सुन्दरी ने कैसा स्वरूप पाया है। स्त्री नहीं अप्सरा जान पड़ती है। क्या कभी वह दिन भी होगा कि वह मुझसे प्रेम करेगी। क्या लाल-लाल रसीले अधर हैं, पर हैं कठार हृदया। दया तो उसे छू नहीं गई। कहती है जो दण्ड चाहे दीजिए। क्या दण्ड दूँ? यदि पा जाऊँ तो हृदय से लगा लूँ। अच्छा तो अब आज से पढ़ना चाहिए, यह सोचते-सोचते उठा और दरवा खोलकर कबूतरों को उड़ाने लगा। सैकड़ों जोड़े थे और एक-से-एक बढ़-बढ़कर। आकाश में तारे बन जायँ, उड़ें तो दिन भर उतरने का नाम न लें। नगर के कबूतरबाज एक-एक जोड़ पर गुलामी करने को तैयार थे। परन्तु क्षण-मात्र में सबके-सब उड़ा दिये। जब दरवा खाली हो गया

ता कहारों को आज्ञा दी कि, इसे उठा ले जाओ, और आग में जला दो। छत्ता भी गिरा दो, नहीं तो सब कबूतर आकर उसी पर बैठेंगे। कबूतरों का काम समाप्त करके, बटेरों और बुलबुलों की ओर चले और उनको भी कारागार से मुक्त कर दिया।

बाहर तो यह चरित्र हो रहा था, भीतर प्रेमवती छाती पीट रही थी कि लड़का न जाने क्या करने पर तत्पर हुआ है? विरजन को बुलाकर कहा—‘बेटी! बच्चे को किसी प्रकार रोको। न जाने उसने मन में क्या ठानी है?’ यह कहकर रोने लगी। विरजन को भी सन्देह हो रहा था कि, अवश्य इनकी कुछ और नीयत है। नहीं तो यह क्रोध क्यों? यद्यपि कमला दुर्व्यसनी था, दुराचारी था, कुचरित्र था; परन्तु इन सब दोषों के साथ उसमें एक बड़ा गुण भी था। जिसकी कोई स्त्री अवहेलना नहीं कर सकती। उसे वृजरानी से सच्ची प्रीति थी। और इसका गुप्त रीति से कई बार परिचय भी मिल गया था। यही कारण था जिसने विरजन को इतना गर्वशील बना दिया था। उसने कागज निकाला और यह पत्र बाहर भेजा।

‘प्रियतम, यह कोप किसपर है? केवल इसी लिए कि मैंने दो तीन कन्कौए फाड़ डाले? यदि मुझे ज्ञात होता कि, आप इतनी-सी बात पर ऐसे क्रुद्ध हो जायेंगे तो कदापि उनपर हाथ न लगाती। पर अब तो अपराध हो गया, क्षमा कीजिए। यह पहला कसूर है।

आपकी—

वृजरानी’

कमलाचरण यह पत्र पाकर ऐसा प्रमुदित हुआ, मानो सारे जगत की सम्पत्ति प्राप्त हो गई। उत्तर देने की इच्छा हुई पर लेखनी ही नहीं उठती। न प्रशस्ति मिलती है, न प्रतिष्ठा; न आरम्भ का विचार आता न समाप्ति का। बहुत चाहते हैं कि, भावपूर्ण लहलहाता हुआ पत्र लिखूँ, पर बुद्धि तनिक भी नहीं दौड़ती। आज प्रथम बार कमलाचरण को अपनी मूर्खता और निरक्षरता पर रोना आया। शोक! मैं एक सीधा-सा पत्र भी नहीं लिख सकता। इस विचार से वह रोने

(१४)

भ्रम

वृजरानी की विदाई के पश्चात् सुवामा का घर ऐसा सूना हो गया मानो पिंजरे से सूआ उड़ गया ! वह इस घर का दीपक और इस शरीर का प्राण थी । घर वही है, पर चारों ओर उदासी छाई हुई है । रहने-वाले वे ही हैं, पर सबके मुख मलिन और नेत्र ज्योति-हीन हो रहे हैं ; वाटिका वही है, पर ऋतु पतझड़ की है । विदाई के एक मास पश्चात् मुंशी संजीवनलाल भी तीर्थयात्रा करने चले गये । धन, सम्पत्ति सब प्रताप को समर्पण कर दी, अपने संग मृगछाला, भगवद्गता और कुछ पुस्तकों के अतिरिक्त कुछ न ले गये ।

प्रतापचन्द्र की प्रेमकांक्षा बड़ी प्रबल थी । पर इसके साथ ही उसे 'दमन की असीम शक्ति भी प्राप्त थी । घर की एक-एक वस्तु उसे विरजन का स्मरण कराता रहती थी । यह विचार एक क्षण के लिए भी दूर न होता था कि यदि विरजन मेरी होती तो ऐसे सुख से जीवन व्यतीत होता ; परन्तु इस विचार को वह हटाता रहता था । पढ़ने बैठता तो पुस्तक खुली रहती, और ध्यान अन्यत्र जा पहुँचता । भोजन करने बैठता तो विरजन का चित्र नेत्रों में फिरने लगता । प्रेमाग्नि को दमन को शक्ति से दबाते-दबाते उसकी अवस्था ऐसी हो गई मानो वर्षों का रोगी है । प्रेमियों को अपनी अभिलाषा पूरी होने की आशा हो या न हो, परन्तु वे मन ही मन अपनी प्रेमिकाओं से मिलाप का आनन्द उठाते रहते हैं । वे भाव-संसार में अपने प्रेम-पात्र से वार्तालाप करते हैं, उसे छेड़ते हैं, उससे रूठते हैं, उसे मनाते हैं और इन भावों से उन्हें क्षुब्ध होती है और मन को एक सुखद और रसमय कार्य मिल जाता है । परन्तु यदि कोई शक्ति उन्हें इस भावोद्यान की सैर करने से रोके, यदि कोई शक्ति उन्हें ध्यान में भी उस प्रियतमा का चित्र न देखने दे, तो उन अभागों प्रेमियों की क्या दशा होगी ? प्रताप इन्हीं अभागों में से था । इसमें सन्देह नहीं कि यदि वह चाहता तो सुखद भावों का

आनन्द भोग सकता था। भाव-संसार का भ्रमण अतीव सुखमय होता है, पर कठिनता तो यह थी कि, वह विरजन के ध्यान को भी कुत्सित वासनाओं से पवित्र रखना चाहता था। उसकी शिक्षा ऐसे पवित्र नियमों से हुई थी, और उसे ऐसे पवित्रात्माओं और नीति-परायण मनुष्यों की संगति से लाभ उठाने के अवसर मिले थे कि उसकी दृष्टि में विचार की पवित्रता की भी उतनी ही प्रतिष्ठा थी जितनी आचार की पवित्रता की। यह कब सम्भव था कि, वह विरजन को—जिसे कई बार बहिन कह चुका था, और जिसे अब भी बहिन समझने का प्रयत्न करता रहता था—ध्यानावस्था में भी ऐसे भावों का केन्द्र बनाता, जो कुवासनाओं से भले ही शुद्ध हों पर मन के दूषित आवेगों से मुक्त नहीं हो सकते थे। जब तक मुंशी सजीवनलाल विद्यमान थे, उसका कुछ न कुछ समय उनके संग ज्ञान और धर्मचर्चा में कट जाता था, जिससे आत्मा को सन्तोष होता था। परन्तु उनके चले जाने के पश्चात् आत्म-सुधार का यह अवसर भी जाता रहा।

सुवामा उसे यों मलिन-मन पाती तो उसे बहुत दुःख होता। एक दिन उसने कहा कि,—‘यदि तुम्हारा चित्त यहाँ न लगता हो तो प्रयाग चले जाओ, वहाँ स्यात् तुम्हारा जी लग जाय।’ यह विचार प्रताप के मन में भी कई बार उत्पन्न हुआ था; परन्तु इस भय से कि, माता को यहाँ अकेले रहने में कष्ट होगा, उसने इसपर कुछ ध्यान नहीं दिया था। माता का आदेश पाकर इरादा पक्का हो गया। यात्रा की तैयारियाँ करने लगा, प्रस्थान का दिन निश्चित हो गया। अब सुवामा की यह दशा है कि, जब देखिए प्रताप को परदेश में रहने-सहने की शिक्षाएँ दे रही है—‘बेटा, देखो किसी से झगड़ा मत मोल लेना। झगड़ने की तुम्हारी वैसे भी आदत नहीं है, परन्तु समझा देती हूँ। परदेश की बात है, फूँक-फूँककर पग धरना। खाने-पीने में असंयम न करना। तुम्हारी यह बुरी आदत है कि जाड़ों में सायंकाल ही सो जाते हो, फिर कोई कितना ही बुलाये, पर जागते ही नहीं। यह स्वभाव यदि परदेश में भी बना रहा तो तुम्हें साँझ का भोजन काहे को मिलेगा? दिन को थोड़ी

देर के लिए सो लिया करना । तुम्हारी आखों में तो दिन को जैसे नींद ही नहीं आती ।’ उसे जब अवकाश मिलता, बेटे को ऐसी ही समयोचित शिक्षाएँ दिया करती ।

निदान प्रस्थान का दिन आ ही गया । गाड़ी दस बजे दिन को छूटती थी । प्रताप ने सोचा,—विरजन से भेट कर लूँ । परदेश जा रहा हूँ । फिर न जाने कब भेट हो । चित्त ने उत्सुक किया । माता से कह बैठा । सुवामा बहुत प्रसन्न हुई । एक थाल में मोदक, समोसे और दो-तीन प्रकार के मुरब्बे रखकर रधिया को दिये कि, लल्लू के संग जा । प्रताप ने बाल बनवाये, कपड़े बदले । चलने को तो चला, पर ज्यों ज्यों पग आगे उठता है, दिल बैठता जाता है । भाँति भाँति के विचार आ रहे हैं । विरजन न जाने मन में क्या समझे, क्या न समझे । चार महीने बीत गये, उसने एक चिट्ठी भी तो मुझे अलग नहीं लिखी । फिर क्यों कर कहूँ कि, मेरे मिलने से उसे प्रसन्नता होगी । अजी, अब उसे तुम्हारी चिन्ता ही क्या है ? तुम मर भी जाओ तो वह आँसू न बहाये । यहाँ की बात और थी, वहाँ की बात और है । और मुझे यह क्या सूझी कि, कपड़े बदलकर आया । यह अवश्य उसकी आँखों में खट-केगा । कहीं यह न समझे कि, लालाजी बन-ठनकर मुझे रिझाने आये हैं । इसी सोच-विचार में बढ़ता चला जाता था । यहाँ तक कि, श्यामा-चरण का मकान दिखाई देने लगा । कमला मैदान में टहल रहा था । उसे देखते ही प्रताप की वह दशा हो गई जो किसी चोर की दशा सिपाही को देखकर होती है । झट एक घर की आड़ में छिप गया और रधिया से बोला:—‘तू जा ये वस्तुएँ दे आ । मैं कुछ काम से बाजार जा रहा हूँ । लौटता हुआ जाऊँगा ।’ यह कहकर बाजार की ओर चला ; परन्तु केवल दस ही डग चला होगा कि, फिर महरी को बुलाया और बोला:—‘मुझे स्यात् देर हो जाय, इसलिए न आ सकूँगा, कुछ पूछे तो यह चिट्ठी दे देना ।’ यह कहकर जेब से पेन्सिल निकाली, और कुछ पंक्तियाँ लिखकर दे दीं जिससे उसके हृदय की दशा का भली भाँति परिचय मिलता है ।

‘मैं आज प्रयाग जा रहा हूँ, अब वहीं पहुँचा। जल्दी के कारण तुमसे नहीं मिल सका। जीवित रहूँगा तो फिर आऊँगा। कभी-कभी अपने कुशल-क्षेम की सूचना देती रहना।

तुम्हारा, प्रताप।’

प्रताप तो यह पत्र देकर चलता हुआ, और रधिया धीरे धीरे विर-जन के घर पहुँची। वह इसे देखते ही दौड़ी और कुशल-क्षेम पूछने लगी:—‘लाला की कोई चिट्ठी आई थी?’

रधिया—जब से गये चिट्ठी-पत्री कुछ भी नहीं आई।

विरजन—चची तो सुख से हैं?

रधिया—लल्लू बाबू प्रयागराज जात हैं तौन तनिक उदास रहत है।

विरजन—(चौंकर) लल्लू प्रयाग जा रहे हैं।

रधिया—हाँ हम सब बहुत समझावा कि परदेस माँ कहाँ जैहो।

मुदा कोऊ की सुनत हैं?

विरजन—कब जायँगे?

रधिया—आज दस बजे की टेम से जवय्यां हैं। तुमसे भेंट करन आवत रहेन, तवन दुवारि पर आइ के लवटि गयेन।

विरजन—यहाँ तक आकर लौट गये। द्वार पर कोई था कि नहीं?

रधिया—द्वार पर कहाँ आये, सड़क पर से चले गये।

विरजन—कुछ कहा नहीं, क्यों लौटा जाता हूँ?

रधिया—कुछ कहा नहीं इतना बोले कि, हमार टेम छूटि जैहै, तौन हम जाइत हैं।

वृजराणी ने घड़ी पर दृष्टि डाली, आठ बजनेवाले थे। प्रेमवती के पास जाकर बोली:—‘माता! लल्लू आज प्रयाग जा रहे हैं, यदि आप कहें तो उनसे मिलती आऊँ। फिर न जाने कब मिलना हो कब न हो। महरा कहती है कि, वह मुझसे मिलने आते थे, पर सड़क के उसी पार से लौट गये।’

प्रेमवती—अभी न बाल गुँधवाये, न माँग भरवाई, न कपड़े बदले, बस जाने को तैयार हो गई!

विरजन—मेरी अम्मा ! आज जाने दीजिए । बाल गुँधवाने बैटूंगी तो दश यहीं बज जायँगे ।

प्रेमवती—अच्छा तो जाओ, पर सन्ध्या तक लौट आना । गाड़ी पैयार करवा लो, मेरी ओर से सुवामा को पालागन कह देना ।

विरजन ने कपड़े बदले माधवी को बाहर दौड़ाया कि गाड़ी तैयार करने के लिए कहा और तब तक कुछ ध्यान आया । रधिया से पूछाः—‘कुछ चिट्ठी-पत्री नहीं दी ?’

रधिया ने पत्र निकालकर दे दिया । विरजन ने उसे बड़े हर्ष से लिया ; परन्तु उसे पढ़ते ही उसका मुख कुम्हला गया । सोचने लगी कि, वह द्वार तक आकर क्यों लौट गये ? और पत्र भी लिखा तो ऐसा उखड़ा और अस्पष्ट । ऐसी कौन जल्दी थी ? क्या गाड़ी के नौकर थे, दिन भर में अधिक नहीं तो पाँच-छः गाड़ियाँ जाती होंगी । क्या मुझसे मिलने के लिए उन्हें दो घण्टे का विलम्ब भी असह्य हो गया ! अवश्य इसमें कुछ-न-कुछ भेद है । मुझसे क्या अपराध हुआ ? अचानक उसे उस समय का ध्यान आया जब वह अति व्याकुल हो प्रताप के पास गई थी और उसके मुख से निकला था, लल्लू मुझसे कैसे सहा जायगा ! विरजन को अबसे पहिले कई बार ध्यान आ चुका था कि, मेरा उस समय उस दशा में जाना बहुत अनुचित था । तुरत विश्वास हो गया कि, मैं अवश्य लल्लू की दृष्टि से गिर गई । मेरा प्रेम और मान अब उनके चित्त में नहीं है । एक ठण्डी साँस लेकर बैठ गई और माधवी से बोलीः—‘कोचवान से कह दो अब गाड़ी न तैयार करे । मैं न जाऊँगी ।’

[१५]

कर्तव्य और प्रेम का संघर्ष

जब तक विरजन ससुराल न आई थी, तब तक उसकी दृष्टि में एक हिन्दू प्रतिव्रता के कर्तव्य और आदर्श का कोई नियम स्थिर न हुआ था । घर में कभी पति-सम्बन्धिनी चर्चा भी न होती थी । उसने

स्त्री-धर्म की पुस्तकें अवश्य पढ़ी थीं ; परन्तु उनका कोई चिरस्थायी प्रभाव उसपर न हुआ था । कभी उसे यह ध्यान ही न आता था कि, यह घर मेरा नहीं है, और मुझे बहुत शीघ्र यहाँ से जाना पड़ेगा ।

परन्तु जब वह ससुराल में आई और अपने प्राणनाथ पति को प्रतिक्षण आँखों के सामने देखने लगी तो शनैः शनैः चित्त-वृत्तियों में परिवर्तन होने लगा । ज्ञात हुआ कि, मैं कौन हूँ और मेरा क्या कर्तव्य है, मेरा क्या धर्म है और क्या उसके निर्वाह की रीति है ? अगली बातें स्वप्नवत् जान पड़ने लगीं । हाँ जिस समय स्मरण हो आता कि, एक अपराध मुझसे ऐसा हुआ है, जिसकी कालिमा को मैं मिटा नहीं सकती तो स्वयं लज्जा से मस्तक झुका लेती और अपने को धिक्कारती । उसे आश्चर्य होता कि, मुझे लल्लू के सम्मुख जाने का साहस कैसे हुआ । कदाचित् इस घटना को वह स्वप्न समझने की चेष्टा करती, तब लल्लू का सौजन्य-पूर्ण चित्र उसके सामने आ जाता और वह हृदय से उसे आशीर्वाद देती ; परन्तु आज जब प्रतापचन्द्र की क्षुद्र-हृदयता से उसे यह विचार करने का अवसर मिला कि, लल्लू उस घटना को अभी भूला नहीं है और उसकी दृष्टि में अब मेरी प्रतिष्ठा नहीं रही ; यहाँ तक कि वह मेरा मुख भी नहीं देखना चाहता, तो उसे ग्लानिपूर्ण क्रोध उत्पन्न हुआ । प्रताप की ओर से चित्त मलिन हो गया और उसका जो प्रेम और प्रतिष्ठा उसके हृदय में थी, वह पल भर में जलकण की भाँति उड़ने लगी । स्त्रियों का चित्त बहुत शीघ्र प्रभावग्राही होता है । जिस प्रताप के लिए वह अपना अस्तित्व धूल में मिला देने को तत्पर थी, वही उसके एक बाल-व्यवहार को भी क्षमा नहीं कर सकता ? क्या उसका हृदय ऐसा संकीर्ण है ? यह विचार विरजन के हृदय में काँटे की भाँति खटकने लगा ।

आज से विरजन की सजीवता लुप्त हो गई । चित्त पर एक बोझ-सा रहने लगा । सोचती कि, जब प्रताप मुझे भूल गये और मेरी रत्ती भर भी प्रतिष्ठा नहीं करते, तो इस शोक से मैं क्यों अपना प्राण घुलाऊँ ? जैसे 'राम तुलसी से वैसे तुलसी राम से ।' यदि उन्हें मुझसे

घृणा है, यदि वह मेरा मुख नहीं देखना चाहते हैं, तो मैं भी उनका मुख देखने से घृणा करती हूँ और मुझे भी उनसे मिलने की इच्छा नहीं। तब वह अपने ही ऊपर झला उठती कि, मैं प्रतिक्षण उन्हीं की बातें क्यों सोचती रहती हूँ और संकल्प करती कि, अब उनका ध्यान भी मन में न आने दूँगी, पर तनिक देर में ध्यान फिर उन्हीं की ओर जा पहुँचता और वे ही विचार वेचैन करने लगते। हृदय के इस सन्ताप को शान्त करने के लिए वह कमलाचरण को सब्बे प्रेम का परिचय देने लगी। वह थोड़ी देर के लिए कहीं चला जाता, तो उसे उलाहना देती। जितने रुपये जमा कर रखे थे वे सब उसे दे दिये कि, अपने लिए सोने की घड़ी और चेन मोल ले लो। कमला ने इन्कार किया तो उदास हो गई। कमला यों ही उसका दास बना हुआ था; उसके प्रेम का बाहुल्य देखकर और भी जान देने लगा। मित्रों ने सुना तो धन्यवाद देने लगे। मियाँ हमीद और सैयद अपने भाग्य को धिक्कारने लगे कि, ऐसी स्नेही स्त्री हमको न मिली। तुम्हें वह दिन माँगे ही रुपये देती है और यहाँ स्त्रियों की खींच-तान से नाक में दम है। चाहे अपने पास कानी कौड़ी न हो, पर उनकी इच्छा अवश्य पूरी होनी चाहिए, नहीं तो प्रलय मच जाय। अजी और क्या कहें, कभी घर में एक बीड़े पान के लिए भी चले जाते हैं, तो वहाँ भी दस-पाँच उलटी-सीधी सुने बिना नहीं चलता। ईश्वर हमको भी तुम्हारी-सी बीबी दे।

यह सब था, कमलाचरण भी प्रेम करता था और वृजरानी भी प्रेम करती थी, परन्तु प्रोमेयों को संयोग से जो हर्ष प्राप्त होता है, उसका विरजन के मुख पर कोई चिह्न दिखाई नहीं देता था। वह दिन-दिन दुबली और पतली होती जाती थी। कमलाचरण शपथ दे-देकर पूछता कि, तुम दुबली क्यों होती जाती हो? उसे प्रसन्न करने के जो-जो उपाय हो सकते, करता, मित्रों से भी इस विषय में सम्मति लेता, पर कुछ लाभ न होता था। वृजरानी हँसकर कह दिया करती कि, तुम कुछ चिन्ता न करो। मैं बहुत अच्छी तरह हूँ। यह कहते-

कहते उठकर उसके बालों में कंधी लगाने लगती या पंखा झलने लगती। इन सेवा और सत्कारों से कमलाचरण फूला न समाता। परन्तु लकड़ी के ऊपर रङ्ग और रोगन लगाने से वह कीड़ा नहीं मरता जो उसके भीतर बैठा हुआ उसका कलेजा खाये जाता है। यह विचार कि, प्रतापचन्द्र मुझे भूल गये और मैं उनकी दृष्टि में गिर गई, शूल की भाँति उसके हृदय को व्यथित किया करता था। उसकी दशा दिन-दिन बिगड़ती गई। यहाँ तक कि, विस्तर पर से उठना कठिन हो गया। डॉक्टरों की दवाएँ होंगे लगें।

उधर प्रतापचन्द्र का प्रयाग में जी लगने लगा था। व्यायाम का तो उसे व्यसन था ही। वहाँ इसका बड़ा प्रचार था। मानसिक बोझ हलका करने के लिए, शारीरिक श्रम से बढ़कर और कोई उपाय नहीं है। प्रातःकाल जिमनास्टिक करता, सायंकाल क्रिकेट और फुटबाल खेलता, आठ-नौ बजे रात तक बाटिका की सैर करता। इतने परिश्रम के पश्चात् चारपाई पर गिरता तो प्रभात होने ही पर आँख खुलती। छः ही मास में क्रिकेट और फुटबाल का कप्तान बन बैठा, और दो-तीन मैच ऐसे खेले कि, सारे नगर में धूम हो गई।

आज क्रिकेट में अलीगढ़ के निपुण खिलाड़ियों से उनका सामना था। ये लोग हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध खिलाड़ियों को परास्त कर विजय का डंका बजाते यहाँ आये थे। उन्हें अपनी विजय में तनिक भी सन्देह न था। पर प्रयागवाले भी निराश न थे। उनकी आशा प्रतापचन्द्र पर निर्भर थी। यदि वह आध घण्टे भी जम गया तो रनों के ढेर लगा देगा। और यदि इतनी ही देर तक उसका गेंद चल गया तो फिर उधर का वारा-न्यारा है। प्रताप को अभी इतना बड़ा मैच खेलने का संयोग न मिला था। कलेजा धड़क रहा था कि, न जाने क्या हो। दस बजे खेल प्रारम्भ हुआ। पहले अलीगढ़वालों के खेलने की बारी आई। दो-ढाई घण्टे तक उन्होंने खूब अपनी करामात दिखलाई। एक बजते-बजते खेल का पहिला भाग समाप्त हुआ। अलीगढ़ ने चार सौ रन किये। अब प्रयागवालों की बारी आई, पर खेलाड़ियों के हाथ-

पाँव फूले हुए थे। विश्वास हो गया कि, हम न जीत सकेंगे। अब खेल का बराबर होना कठिन है। इतने रन कौन करेगा? अकेला प्रताप क्या बना लेगा? पहिला खिलाड़ी आया और तीसरे गेंद में विदा हो गया, दूसरा खिलाड़ी आया और कठिनता से पाँच गेंद खेल सका, तीसरा आया और पहिले ही गेंद में उड़ गया, चौथे ने आकर दो-तीन हिट लगाये पर जम न सका। पाँचवें साहव कॉलिज में एक थे, पर यहाँ उनकी भी एक न चली। थापी रखते ही रखते चल दिये। अब प्रतापचन्द्र दृढ़ता से पैर उठाता, बैठ घुमाता मैदान में आया। दोनों पक्षवालों ने करतल-ध्वनि की। प्रयागवालों की दशा अकथनीय थी। प्रत्येक मनुष्य की दृष्टि प्रतापचन्द्र की ओर लगी हुई थी। सबके हृदय धड़क रहे थे। चतुर्दिक सन्नाटा छाया हुआ था। कुछ लोग दूर बैठकर ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे कि, प्रताप की विजय हो। देवी-देवता स्मरण किये जा रहे थे। पहिला गेंद आया, प्रताप ने खाली दिया। प्रयागवालों का साहस घट गया। दूसरा आया, वह भी खाली गया। प्रयागवालों का कलेजा नाभी तक बैठ गया। बहुत-से लोग छतरी सँभाल घर की ओर चले। तीसरा गेंद आया। एक पड़ाके की ध्वनि हुई और गेंद ल, (गर्म हवा) की भाँति गगनभेदन करता हुआ हिट पर खड़े होनेवाले खिलाड़ी से सौ गज आगे गिरा। लोगों ने तालियाँ बजाईं। सूखे धान में पानी पड़ा। जानेवाले ठिठक गये। निराशों को आशा बँधी। चौथा गेंद आया और पहिले गेंद से १० गज आगे गिरा। फील्डर चौंके, हिट पर मदद पहुँचाई। पाँचवाँ गेंद आया और कट पर गया। इतने में ओवर हुआ। बॉलर बदले, नये बॉलर पूरे वधिक थे। घातक गेंद फेंकते थे। पर उनके पहिले ही गेंद को प्रताप ने आकाश में भेजकर सूर्य से स्पर्श करा दिया। फिर तो गेंद और उसकी थापी में मैत्री-स्ती हो गई। गेंद आता और थापी से पार्श्व ग्रहण करके कभी पूर्व का मार्ग लेता, कभी पश्चिम का, कभी उत्तर का और कभी दक्षिण का। दौड़ते दौड़ते फील्डरों की साँसें फूल गईं। प्रयागवाले उछलते थे, तालियाँ बजाते थे। टोपियाँ वायु में

उछल रही थीं। किसी ने रुपये लुटा दिये और किसी ने अपनी सोने की जञ्जीर लुटा दी। विपक्षी मन में कुढ़ते, झल्लाते, कभी क्षेत्र का क्रम परिवर्तन करते, कभी बॉलर परिवर्तन करते। पर सब चातुरी और क्रीड़ा-कौशल निरर्थक हो रहा था। गेंद की थापी से मित्रता-टूट हो गई थी। पूरे दो वण्टे तक प्रताप पड़ाके, बम्बगोले और हवाईयाँ छोड़ता रहा, और फील्डर गेंद की ओर इस प्रकार लपकते जैसे बच्चे चन्द्रमा की ओर लपकते हैं। रनों की संख्या तीन सौ तक पहुँच गई। विपक्षियों के छक्के छूटे। हृदय ऐसा थर्रा गया कि, एक गेंद भी सीधा न आता था। यहाँ तक कि, प्रताप ने पचास रन और किये, और अब उसने एम्पायर से तनिक विश्राम करने के लिए अवकाश माँगा। उसे आता देखकर सहस्रों मनुष्य उसी ओर दौड़े, और उसे बारी बारी से गोद में उठाने लगे। चारों ओर भगदड़ मच गई। सैकड़ों छाते, छड़ियाँ, टोपियाँ और जूते ऊर्ध्वगामी हो गये। मानो वे भी उमङ्ग में उछल रहे थे। ठीक उसी समय तारघर का चपरासी वाइसिकल पर आता हुआ दिखाई दिया। निकट आकर बोला:—“प्रतापचन्द्र किसका नाम है?” प्रताप ने चौंककर उसकी ओर देखा। और चपरासी ने तार का लिफासा उसके हाथ में रख दिया। उसे पढ़ते ही प्रताप का वदन पीला हो गया। दीर्घ श्वास लेकर कुर्सी पर बैठ गया और बोला:—“यारो! अब मैच का निबटारा तुम्हारे हाथ में है। मैंने अपना कर्तव्यपालन कर दिया, इसी डाक से घर चला जाऊँगा।”

यह कहकर वह बोर्डिंग हाउस की ओर चला। सैकड़ों मनुष्य पूछने लगे,—“क्या है? क्या है?” लोगों के मुख पर उदासी छा गई, पर उसे बात करने का कहाँ अवकाश? उसी समय ट्राम पर चढ़ा और स्टेशन की ओर चला। रास्ते भर उसके मन में तर्क-वितर्क होते रहे। बार बार अपने को धिक्कार देता कि, क्यों न चलते समय उससे मिल लिया? न जाने अब भेंट हो कि न हो। ईश्वर न करे कहीं उसके दर्शन से वञ्चित रहूँ; यदि रहा तो मैं भी मुँह में कालिख पोतकर कहीं मर रहूँगा। यह सोचकर कई बार रोया। नौ बजे रात को गाड़ी

बनारस पहुँची। उसपर से उतरते ही सीधा श्यामाचरण के घर की ओर चला। चिन्ता के मारे आँखें डबडबाई हुई थीं और कलेजा धड़क रहा था। डिप्टीसाहब शिर झुकाये कुर्सी पर बैठे हुए थे, और कमला डॉक्टर साहब के यहाँ जाने को उद्यत था। प्रतापचंद्र को देखते ही दौड़कर लिपट गया। श्यामाचरण ने भी गले लगाया और बोले:—
“क्या अभी सीधे इलाहाबाद से चले आ रहे हो?”

प्रताप—जी हाँ। आज माताजी का तार पहुँचा कि विरजन की बहुत बुरी दशा है। क्या अभी वही दशा है?

श्यामाचरण—क्या कहें, इधर दो-तीन मास से दिन दिन उसका शरीर क्षीण होता जाता है। औषधियों का कुछ भी असर नहीं होता। देवें ईश्वर की क्या इच्छा है? डाक्टर साहब तो कहते थे, क्षयरोग है। पर वैद्यराजजी हृदय-दौर्बल्य बतलाते हैं।

विरजन को जबसे सूचना मिली कि प्रतापचन्द्र आये हैं, तबसे उसके हृदय में आशा और भय की जुड़दौड़ मची हुई थी। कभी सोचती कि, घर आये होंगे, चची ने बरबस ठेल-ठालकर यहाँ भेज दिया होगा। फिर ध्यान हुआ, हो न हो मेरी बीमारी का समाचार पा, घबड़ाकर चले आये हों! परन्तु नहीं। उन्हें मेरी ऐसी क्या चिन्ता पड़ी है? सोचा होगा कहीं मर न जाय, चले सांसारिक व्यवहार पूरा करता आऊँ। उन्हें मेरे मरने-जीने का क्या सोच? आज मैं भी महा-शय से जी खोलकर बातें करूँगी। पर नहीं, बातों की आवश्यकता ही क्या है? उन्होंने चुप साधी है तो मैं क्यों बोलूँ? बस इतना कह दूँगी कि, बहुत अच्छी हूँ। और आपके कुशल की कामना रखती हूँ? फिर मुख न खोलूँगी। और मैं यह मैली-कुचैली साड़ी क्यों पहिने हूँ? जो अपना सहवेदी न हो, उसके आगे यह भेष बनाये रखने से लाभ? वह अतिथि की भाँति आये हैं। मैं भी पाहुनी की भाँति उनसे मिलूँगी। मनुष्य का चित्त कैसा चञ्चल है? जिस मनुष्य की अकृपा ने विरजन की यह गति बना दी थी उसी को जलाने के लिए ऐसे-ऐसे उपाय सोच रही है।

दस बजे का समय था। माधवी बैठी पंखा झल रही थी, औषधियों की शीशियाँ इधर-उधर पड़ी हुई थीं, और विरजन चारपाई पर पड़ी हुई ये ही सब बातें सोच रही थी कि, प्रताप घर में आया। माधवी चौंककर बोली—“बहिन, उठो, आ गये।” विरजन झपटकर उठी और चारपाई से उतरना चाहती थी कि, निर्बलता के कारण पृथ्वी पर गिर पड़ी। प्रताप ने उसे संभाला और चारपाई पर लेटा दिया। हा ! यह वही विरजन है जो आज से कई मास पूर्व रूप, लावण्य की मूर्ति थी। जिसके मुखड़े पर चमक और आँखों में हँसी का वास था। जिसका भाषण श्याम का गाना था और हँसना मन का लुभाना था। वह रसीली आँखोंवाली, मीठी बातोंवाली विरजन आज केवल अस्थिचर्मावशिष्ट है। पहिचानी नहीं जाती। प्रताप की आँखों में आँसू भर आये। कुशल पूछना चाहता था, पर मुख से केवल इतना निकला—“विरजन !” और नेत्रों से जलविन्दु वरसने लगे। प्रेम की आँखें मनोभावों के परखने की कसौटी हैं। विरजन ने आँख उठाकर देखा। और उन अश्रुविन्दुओं ने उसके मन का सारा मैल धो दिया।

जैसे कोई सेनापति आनेवाले युद्ध का चित्र मन में मोचता है और शत्रु को अपनी पीठ पर देखकर वदह्वास हो जाता है और उसे निर्धारित चित्र का कुछ ध्यान भी नहीं रहता है; उसी प्रकार विरजन प्रतापचन्द्र को अपने सम्मुख देखकर वे सब बातें भूल गईं जो अभी पड़ी-पड़ी सोच रही थी। वह प्रताप को रोते देखकर अपना सब दुःख भूल गई। और चारपाई से उठकर आँचल से आँसू पोंछने लगी। प्रताप, जिसे अपराधी कह सकते हैं, इस समय दीन बना हुआ था और विरजन—जिसने अपने को सुखाकर इस दशा तक पहुँचाया था—रो-रोकर उससे कह रही थी—“लल्लू ! चुप रहो ईश्वर जानता है, मैं भली भाँति अच्छी हूँ।” मानो अच्छा न होना उसका अपराध था। स्त्रियों की संवेदनशीलता कैसी कोमल होती है ! प्रतापचन्द्र के एक साधारण संकोच ने विरजन को इस जीवन से उपेक्षित बना दिया था।

आज आँसू की कुछ बूँदों ने उसके हृदय को उस सन्ताप, उस जलन और उस अग्नि को शान्त कर दिया, जो कई महीनों से उसके रुधिर और हृदय को जला रही थी। जिस रोग को बड़े बड़े वैद्य और डॉक्टर अपनी औषध तथा उपाय से अच्छा न कर सके थे, उसे अश्रुविन्दुओं ने क्षण भर में चढ़ा कर दिया। क्या यह पानी के विन्दु अमृत के विन्दु थे ?

प्रताप ने धीरज धरकर पूछा—‘विरजन ! तुमने अपनी क्या गति बना रखी है ?’

विरजन (हँसकर)—यह गति मैंने नहीं बनाई, तुमने बनाई है।

प्रताप—माताजी का तार न पहुँचता तो मुझे सूचना भी न होती।

विरजन—आवश्यकता ही क्या थी ? जिसे भुलाने के लिए तुम प्रयाग चले गये, उसके मरने-जीने की तुम्हें क्या चिन्ता ?

प्रताप—बातें बना रही हो। पराये को क्यों पत्र लिखती ?

विरजन—किसे आशा थी कि, तुम इतनी दूर से आने का या पत्र लिखने का कष्ट उठाओगे। जो द्वार से आकर फिर जाय और मुख देखने से घृणा करे उसे पत्र भेजकर क्या करती ?

प्रताप—उस समय लौट जाने का जितना दुःख मुझे हुआ, मेरा चित्त ही जानता है। तुमने उस समय तक मेरे पास कोई पत्र न भेजा था। मैंने समझा अब सुध भूल गई।

विरजन—यदि मैं तुम्हारी बातों को सच न समझती होती तो कह देती कि, ये सब सोची हुई बातें हैं।

प्रताप—भला जो समझो, अब यह बताओ कि, कैसा जी है ? मैंने तुम्हें पहिचाना नहीं, ऐसा मुख फीका पड़ गया है।

विरजन—अब अच्छी हो जाऊँगी, औषधि मिल गई।

प्रताप संकेत समझ गया। हा शोक ! मेरी तनिक-सी चूक ने यह प्रलय कर दिया। देर तक उसे समझाता रहा। और प्रातःकाल जब वह अपने घर चला तो विरजन का वदन विकसित था, उसे विश्वास हो गया कि, लल्लू मुझे भूले नहीं हैं और मेरी सुध और प्रतिष्ठा उनके

हृदय में विद्यमान है। प्रताप ने उसके मन से वह काँटा निकाल दिया जो कई मास से खटक रहा था। और जिसने उसकी यह गति कर रखी थी। एक ही सप्ताह में उसका मुखड़ा स्वर्ण हो गया, मानो कभी बीमार ही न थी।

[१६]

स्नेह पर कर्तव्य की विजय

रोगी जब तक बीमार रहता है, उसे सुध नहीं रहती कि, कौन मेरी औषधि करता है; कौन मुझे देखने के लिए आता है। वह अपने ही कष्ट में इतना ग्रस्त रहता है कि, किसी दूसरी की बात का ध्यान ही उसके हृदय में उत्पन्न नहीं होता, पर जब वह आरोग्य हो जाता है, तब उसे अपनी शुश्रूषा करनेवालों का ध्यान और उनके उद्योग तथा परिश्रम का अनुमान होने लगता है। और उसके हृदय में उनका प्रेम तथा आदर बढ़ जाता है। ठीक यही दशा वृजराणी की थी। जब तक वह स्वयं अपने कष्ट में मग्न थी, कमलाचरण की व्याकुलता और कष्टों का अनुभव न कर सकती थी। निस्सन्देह वह उसकी खातिरदारी में कोई अंश शेष न रखती थी; परन्तु यह व्यवहार-पालन के विचार से होती थी न कि सच्चे प्रेम से। परन्तु जब उसके हृदय से वह व्यथा मिट गई तो उसे कमला का परिश्रम और उद्योग स्मरण हुआ और यह चिन्ता हुई कि इस अपार उपकार का प्रति-उत्तर क्या दूँ? मेरा धर्म था कि सेवा-सत्कार से उन्हें सुख देती, पर सुख देना कैसा; उलटे उनके प्राण ही की गाहक हुई हूँ! वे तो ऐसे सच्चे दिल से मेरा प्रेम करें और मैं अपना कर्तव्य भी न पालन कर सकूँ! ईश्वर को क्या मुँह दिखाऊँगी? सच्चे प्रेम का कमल बहुधा कृपा के प्रभाव से खिल जाया करता है। जहाँ रूप, यौवन, सम्पत्ति और प्रभुता तथा स्वाभाविक सौजन्य प्रेम का बीज बोने में अकृतकार्य रहते हैं, वहाँ प्रायः उपकार का जादू चल जाला है। कोई हृदय ऐसा वज्र और कठोर नहीं हो सकता जो सत्य सेवा से द्रवीभूत न हो जाय।

विरजन ने उसे चाव से हाथ में ले लिया और पहिला ही पन्ना उलटा था कि अचम्भा-सा हो गया। वह उसी का चित्र था। वह अपने पलंग पर चादर ओढ़े निद्रा में पड़ी हुई थी, बाल लिलाट पर बिखरे हुए थे, अधरों पर एक मोहनी मुसकान की झलक थी, मानों कोई मन-भावन स्वप्न देख रही है। चित्र के नीचे लिखा हुआ था 'प्रेम-स्वप्न' विरजन चकित थी, मेरा ऐसा चित्र उन्होंने कैसे खिंचवाया, और किससे खिंचवाया। क्या किसी फोटोग्राफर को भीतर लाये होंगे? नहीं ऐसा क्या वे करेंगे? क्या आश्चर्य है, स्वयं ही खींच लिया हो। इधर महीनों से बहुत परिश्रम भी तो करते हैं। यदि स्वयं ऐसा चित्र खींचा है तो वस्तुः प्रशंसनीय कार्य किया है। दूसरा पन्ना उलटा तो उसमें भी अपना ही चित्र पाया। वह एक साड़ी पहिने, आधे सिर तक आँचल डाले वाटिका में भ्रमण कर रही थी। इस चित्र के नीचे लिखा हुआ था 'वाटिका-भ्रमण'। तीसरा पन्ना उलटा तो वह भी अपना ही चित्र था। वह वाटिका में पृथ्वी पर बैठी हार गूँथ रही थी। यह चित्र तीनों में सबसे सुन्दर था। क्योंकि चित्रकार ने इसमें बड़ी कुशलता से प्राकृतिक रङ्ग भरे थे। इस चित्र के नीचे लिखा हुआ था—'अलवेली मालिन'। अब विरजन को ध्यान आया कि एक दिन जब मैं हार गूँथ रही थी तो कमलाचरण नील के काँटे की झाड़ी से मुसकुराते हुए निकले थे। अवश्य उसी दिन यह चित्र खींचा होगा। चौथा पन्ना उलटा तो एक परम मनोहर और सुहावना दृश्य दिखाई दिया। निर्मल जल से लहराता हुआ एक सरोवर था और उसके दोनों तीरों पर जहाँ तक दृष्टि पहुँचती थी, गुलाबों की छटा दिखाई देती थी। उनके कोमल पुष्प वायु के झोंकों से लचके जाते थे। ऐसा ज्ञात होता था, मानो प्रकृति ने हरे आकाश में लाल तारे टाँक दिये हैं। यह किसी अंग्रेजी चित्र का अनुकरण प्रतीत होता था। अलबम के और पन्ने अभी कोरे थे।

विरजन ने अपने चित्रों को फिर देखा और उस साभिमान आनन्द से—जो प्रत्येक रमणी को अपनी सुन्दरता पर होता है—अलबम को छिपाकर रख दिया। सन्ध्या को कमलाचरण ने आकर देखा ती अल-

बम का पता नहीं। हाथों के तोते उड़ गये। चित्र उसके कई मास के कठिन परिश्रम का फल थे। और उसे आशा थी कि, यही अलबम उपहार देकर विरजन के हृदय में और भी घर कर लूँगा। बहुत व्याकुल हुआ। भीतर जाकर विरजन से पृष्ठा तो उसने साफ़ इन्कार किया। बेचारा घबराया हुआ अपने मित्रों के घर गया कि कोई उनमें से उठा ले गया हो। पर वहाँ भी फवतियों के अतिरिक्त और कुछ हाथ न लगा। निदान जब महाशय पूरे निराश हो गये तो शाम को विरजन ने अलबम का पता बतलाया। इसी प्रकार दिवस सानन्द व्यतीत हो रहे थे। दोनों यही चाहते थे कि प्रेमक्षेत्र में मैं आगे निकल जाऊँ। पर दोनों के प्रेम में अन्तर था। कमलाचरण प्रेमोन्माद में अपने को भूल गया। पर इसके विरुद्ध विरजन का प्रेम कर्तव्य की नींव पर स्थित था। हाँ, यह आनन्दमय कर्तव्य था।

तीन वर्ष और व्यतीत हो गये। यह उनके जीवन के तीन शुभ वर्ष थे। चौथे वर्ष का आरम्भ आपत्तियों का आरम्भ था। कितने ही प्राणियों को संसार की सुख-सामग्रियाँ इस परिमाण से मिलती हैं कि, उनके लिए दिन सदा होली और रात्रि सदा दिवाली रहती है। पर कितने ही ऐसे हतभाग्य जीवन हैं, जिनके आनन्द के दिन एक बार बिजली की भाँति चमककर सदा के लिए लुप्त हो जाते हैं। वृजरानी उन्हीं अभागों में थी। वसन्त की ऋतु थी। सीरी सीरी वायु चल रही थी। सरदी ऐसी कड़ाके की पड़ती थी कि, कूओं का पानी जम जाता था। उस समय नगरों में प्लेग का प्रकोप हुआ। सहस्रों मनुष्य उसकी भेंट होने लगे। एक दिन बहुत कड़ा ज्वर आया, एक गिल्टी निकली, और बीमार चल बसा। गिल्टी का निकलना मानो मृत्यु का संदेश था। क्या वैद्य, क्या डाक्टर, किसी की कुछ न चलती थी। सैकड़ों घरों के दीपक बुझ गये। सहस्रों बालक अनाथ, और सहस्रों स्त्रियाँ विधवा हो गईं। जिसको जिधर गली मिली, भाग निकला। प्रत्येक मनुष्य को अपनी अपनी पड़ी हुई थी। कोई किसी का सहायक और हितैषी न था। माता-पिता बच्चों को छोड़कर भागे। स्त्रियों ने पुरुषों से सम्बन्ध

परित्याग किया। गलियों में, सड़कों पर, घरों में जिधर देखिए मृतकों के ढेर लगे हुए थे। दूकानें बन्द हो गईं। द्वारों पर ताले बन्द हो गये। चतुर्दिक् धूल उड़ती थी। कठिनता से कोई जीववारी चलता-फिरता दिखाई देता था। और यदि कोई कार्यवश घर से निकल पड़ता तो ऐसी शीघ्रता से पाँव उठाता, मानो मृत्यु का दूत उसका पीछा करता आ रहा है। सारी बस्ती उजाड़ हो गई। यदि आवाद थे तो कबरिस्तान या श्मशान। चोरों और डाकुओं की बन आई। दिन दोपहर ताले टूटते थे। और सूर्य के प्रकाश में सेंधें पड़ती थीं। उस दारुण दुःख का वर्णन नहीं हो सकता।

बाबू श्यामाचरण परम दृढ़चित्त मनुष्य थे। गृह के चारों ओर महल्ले के महल्ले शून्य हो गये थे, पर वे अभी तक अपने घर में निर्भय जमे हुए थे, लेकिन, जब उनका साईस मर गया तो सारे घर में खलबली मच गई। गाँव में जाने की तैयारियाँ होने लगीं। मुंशीजी ने उसी जिले के कुछ गाँव मोल ले लिये थे। और मझगाँव नामी ग्राम में एक अच्छा सा घर भी बनवा रखा था। उनकी इच्छा थी कि पेनशन पाने पर यहीं रहूँगा, काशी छोड़कर आगरे में कौन मरने जाय। विरजन ने यह विचार सुना तो बहुत प्रसन्न हुई। ग्राम्यजीवन के मनोहर दृश्य उसके नेत्रों में फिर रहे थे। हरे-भरे वृक्ष और लहलहाते हुए खेत, हरिणों की क्रीड़ा और पक्षियों का कलरव। यह छटा देखने के लिए उसका चित्त लालायित हो रहा था। कमलाचरण भी शिकार खेलने के लिए अस्त्र-शस्त्र ठीक करने लगे। पर अचानक मुंशीजी ने उसे बुलाकर कहा कि, तुम प्रयाग जाने के लिए तैयार हो जाओ। प्रतापचन्द्र वहाँ तुम्हारी सहायता करेगा। गाँवों में व्यर्थ समय बिताने से क्या लाभ? इतना सुनना था कि कमलाचरण की नानी मर गई। प्रयाग जाने से इन्कार कर दिया। बहुत देर तक मुंशीजी उसे समझाते रहे, पर वह जाने के लिए राजी न हुआ। निदान उनके इन अन्तिम शब्दों ने यह निपटारा कर दिया:—‘तुम्हारे भाग्य में विद्या लिखी ही नहीं है। मेरी मूर्खता है कि, उससे लड़ता हूँ।’

वृजरानी ने जब यह बात सुनी तो उसे बहुत दुःख हुआ। वृजरानी यद्यपि समझती थी कि कमला का ध्यान पढ़ने में नहीं लगता; पर जब तब यह अरुचि उसे बुरी न लगती थी; बालक कभी-कभी उसका जी चाहता कि, आज कमला स्कूल न जाते तो अच्छा था। उनकी प्रेम-मय वाणी उसके कानों को बहुत प्यारी मालूम होती थी। पर जब उसे यह ज्ञात हुआ कि, कमला ने प्रयाग जाना अस्वीकार किया और लालाजी बहुत समझा रहे हैं, तो उसे और भी दुःख हुआ। क्योंकि उसे कुछ दिनों अकेले रहना सख्त था, पर कमला पिता का आज्ञाविरुद्ध करे यह सख्त न था। माधवी को भेजा कि अपने भग्या को बुला ला। पर कमला ने जगह से हिलने की शपथ खा ली थी। सोचता कि, भीतर जाऊँगा तो वह अवश्य प्रयाग जाने के लिए कहेगी। वह क्या जाने कि, यहाँ हृदय पर क्या बीत रही है। बातें तो ऐसी मीठी-मीठी करती हैं पर जब कभी प्रेम-परीक्षा का समय आ जाता है तो, कर्तव्य और नीति की ओट में मुख छिपाने लगती है। सत्य यह है कि, स्त्रियों में प्रेम की गन्ध ही नहीं होती।

जब बहुत देर हो गई और कमला कमरे से न निकला तो वृजरानी स्वयं आई और बोली:—“क्या आज घर में आने की शपथ खा ली है? राह देखते-देखते आँखें पथरा गईं।”

कमला—भीतर जाते भय लगता है।

विरजन—अच्छा चलो मैं संग-संग चलती हूँ, अब तो नहीं डरोगे?

कमला—मुझे प्रयाग जाने की आज्ञा मिली है।

विरजन—मैं भी तुम्हारे संग चलूँगी।

यह कहकर विरजन ने कमलाचरण की ओर आँखें उठाईं। उनमें अंगूर के दाने लगे हुए थे। कमला हार गया। इन मोहिनी आँखों में आँसू देखकर किसका हृदय था जो अपने हठ पर दृढ़ रहता? कमला ने उसे कण्ठ से लगा लिया और कहा:—‘मैं जानता था कि, तुम जीत जाओगी। इसी लिए भीतर न जाता था।’ रात-भर प्रेम-वियोग की

बातें होती रहीं। बार-बार आँखें परस्पर मिलतीं, मानों वे फिर कभी न मिलेंगी। शोक ! किसे मालूम था कि यह अन्तिम भेट है। विरजन को फिर कमला से मिलना नसीब न हुआ।

[१७]

कमला के नाम विरजन के पत्र

(१)

“प्रियतम !

मझगाँव ।

प्रेमपत्र आया। शिर पर चढ़ाकर नेत्रों से लगाया। ऐसे पत्र तुम न लिखा करो। हृदय विदीर्ण हो जाता है। मैं लिखू तो असंगत नहीं। यहाँ चित्त अति व्याकुल हो रहा है। क्या मुनती थी और क्या देखती हूँ ? टूटे-फूटे फूस के झोपड़े, मिट्टी की दीवारें, घरों के सामने कूड़े-करकट के बड़े-बड़े ढेर, कीचड़ में लिपटी हुई भैंसों, दुर्बल गायों, ये सब दृश्य देखकर जी चाहता है, कहीं चली जाऊँ। मनुष्यों को देखो तो उनकी शोचनीय दशा है। हड्डियाँ निकली हुई हैं। वे विपत्ति की मूर्तियाँ और दरिद्रता के जीवित चित्र हैं। किसी के शरीर पर एक बे-फटा वस्त्र नहीं है। और कैसे भाग्यहीन कि, रात-दिन पसीना बहाने पर भी कभी भरपेट रोटियाँ नहीं मिलतीं। हमारे घर के पिछवाड़े एक गड्ढा है, माधवी खेलती थी। पाँव फिसला तो पानी में गिर पड़ी। यहाँ किंवदन्ती है कि इस गड्ढे में चुड़ैल नहाने आया करती हैं और वे अकारण राह चलनेवालों से छेड़ किया करती हैं। इसी प्रकार द्वार पर एक भारी पीपल का पेड़ है। वह भूतों का आवास है। पीपल के भूतों और गड्ढों की चुड़ैलों में पारस्परिक सम्बन्ध है। गड्ढे का तो बहुत भय नहीं है पर इस भयंकर पीपल का त्रास सारे गाँव के हृदय पर ऐसा छाया हुआ है, कि सूर्यास्त ही से मार्ग बन्द हो जाता है। बालक और स्त्रियाँ तो उधर पैर ही नहीं रखते। हाँ अकेले-दुकेले पुरुष कभी-कभी चले जाते हैं, पर वे भी घबराये हुए। ये दो स्थान मानों उन निकृष्ट जीवों के केन्द्र हैं। इनके अतिरिक्त सैकड़ों भूत चुड़ैल भिन्न भिन्न

स्थानों के निवासी पाये जाते हैं। इन लोगों को चुड़ैलें देख पड़ती हैं। लोगों ने इनके स्वभाव पहचान लिये हैं। किसी भूत के विषय में कहा जाता है कि, वह शिर पर चढ़ता है तो महीनों नहीं उतरता। और कोई दो एक दिन में पूजा लेकर अलग हो जाता है। गाँववालों में इन विषयों पर इस प्रकार वार्तालाप होता है, मानो ये प्रत्यक्ष घटनाएँ हैं। यहाँ तक सुना गया है कि, चुड़ैलें भोजन-पानी माँगने भी आया करती हैं। उनकी साड़ियाँ प्रायः बगुले के पंख की भाँति उज्ज्वल होती हैं। और ये बातें कुछ-कुछ नाक में करती हैं। हाँ गहनों का प्रचार उनकी जाति में कम है। उन्हीं स्त्रियों पर उनके आक्रमण का भय रहता है, जो बनाव-श्रृंगार किये, रंगीन वस्त्र पहिने, अकेली उनकी दृष्टि पड़ जायँ। फूलों की वास उनको बहुत भाती है। सम्भव नहीं कि कोई स्त्री या बालक रात को अपने पास फूल रखकर सोवे।

भूतों के मान और प्रतिष्ठा का अनुमान बड़ी चतुराई से किया गया है। जोगी बाबा आधी रात को काली कमरिया ओढ़े, खड़ाऊ पर सवार, गाँव के चारों ओर भ्रमण करते हैं। और भूले-भटके पथिकों को मार्ग बताते हैं। साल में एक बार उनकी पूजा होती है। अब भूतों में नहीं वरन् देवताओं में गिने जाते हैं। वे किसी भी आपत्ति को यथाशक्ति गाँव के भीतर पग नहीं रखने देते। इसके विरुद्ध धोबी बाबा से गाँव भर थराता है। जिस वृक्ष पर उनका वास है, उधर से यदि कोई दीपक जलने के पश्चात् निकल जाय तो उसके प्राणों की कुशलता नहीं। उन्हें भगाने के लिए दो बोतल मदिरा काफी है। उनका पुजारी मंगल के दिन उस वृक्ष के तले गाँजा और चरस रख आता है। एक लाला साहब भी भूत बन बैठे हैं। ये मशशय पटवारी थे। उन्हें कई पीड़ित असामियों ने मार डाला था। उनकी पकड़ ऐसी गहरी है कि, प्राण लिये बिना नहीं छोड़ती। कोई पटवारी यहाँ एक वर्ष से अधिक नहीं जाता। गाँव से थोड़ी दूर पर एक पेड़ है। उस पर मौलवी साहब निवास करते हैं। वे बेचारे किसी को नहीं छोड़ते। हाँ बृहस्पति के दिन पूजा न पहुँचाई जाय तो बच्चों को छोड़ते हैं।

कैसी मूर्खता है ! कैसी मिथ्या भक्ति है ! यह भावनाएँ इनके हृदय पर वज्रलीक हो गई हैं। बालक बीमार हुआ कि, भूत की पूजा होने लगी। खेत-खलिहान में भूत का भाग, व्याह आदि में भूत का भाग जहाँ देखिए भूत ही भूत दीखते हैं। यहाँ न देवी है न देवता। भूतों ही का साम्राज्य है। यमराज यहाँ चरण नहीं रखते, भूत ही जीव-हरण करते हैं। इन भावों का किस प्रकार सुधार होगा किमधिकम्।
तुम्हारी, विरजन।

(२)

‘प्यारे !

मझगाँव

बहुत दिनों के पश्चात् आपकी प्रेमपत्री प्राप्त हुई। क्या सचमुच पत्र लिखने का अवकाश नहीं ? पत्र क्या लिखा है, मानो बेगार टाली है। तुम्हारी तो यह आदत न थी। क्या वहाँ जाकर कुछ और हो गये ? तुम्हें यहाँ से गये दो मास से अधिक होते हैं। इस बीच में कई छोटी-बड़ी छुट्टियाँ पड़ीं। पर तुम न आये। तुमसे कर बाँधकर कहती हूँ,—होली की छुट्टी में अवश्य आना। यदि अवकी बार तरसाई तो मुझे सदा उलाहना रहेगा।

यहाँ आकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो किसी दूसरे संसार में आ गई हूँ। रात को शयन कर रही थी कि, अचानक हा-हा हू-हू का कोलाहल सुनाई दिया। चौंककर उठ बैठी। पूछा तो ज्ञात हुआ कि, लड़के घर घर से उपले और लकड़ी जमा कर रहे थे। होली माता का यही आहार है। यह बेढङ्गा उपद्रव जहाँ पहुँच गया, ईधन का दिवाला हो गया। किसी की शक्ति नहीं जो इस सेना को रोक सके। एक नम्बरदार की मण्डिया लोप हो गई। उसमें दस-बारह बैल सुगमता-पूर्वक बाँधे जा सकते थे। होलीवाले कई दिन से घात में थे। अवसर पाकर उड़ा ले गये। एक कुरमी का झोंपड़ा उड़ गया, कितने उपले बेपता हो गये। लोग अपनी लकड़ियाँ घरों में भर लेते हैं। लालाजी ने एक पेड़ ईधन के लिए मोल लिया था। आज रात को वह भी होली माता के पेट में चला गया। दो-तीन घरों के किवाड़ उतर गये।

पटवारी साहब द्वार पर सो रहे थे। उन्हें भूमि पर ढकेलकर लोग चार-पाई ले भागे। चतुर्दिक् ईधन की लूट मची हुई है। जो वस्तु एक बार होली माता के मुख में चली गई, उसे फिर लाना बड़ा भारी पाप है। पटवारी साहब ने बड़ी धमकियाँ दीं। मैं जमाबन्दी बिगाड़ दूँगा। खसरा झूठकर दूँगा। पर कुछ प्रभाव न हुआ। यहाँ की प्रथा ही है कि इन दिनों होलीवाले जो वस्तु पा जायँ, निर्विघ्न उठा ले जायँ। कौन किसकी पुकार करे? नवयुवक पुत्र अपने पिता की आँख बचाकर अपनी ही वस्तु उठवा देता है। यदि वह ऐसा न करे तो अपने समाज में अपमानित समझा जाय।

खेत पक गये हैं, पर काटने में दो सप्ताह का विलंब है। मेरे द्वार पर से मीलों का दृश्य दिखाई देता है। गेहूँ और जौ के सुथरे खेतों के किनारे किनारे कुसुम के अरुण और केसर वर्ण पुष्पों की पंक्ति परम सुहावनी लगती है। तोते चतुर्दिक् मण्डलाया करते हैं।

माधवी ने यहाँ कई सखियाँ बना रखी हैं। पड़ोस में एक अहीर रहता है। राधा नाम है। गत वर्ष माता-पिता प्लेग के ग्रास हो गये थे। गृहस्थी का कुल भार उसी के शिर पर है। उसकी स्त्री तुलसा प्रायः हमारे यहाँ आती है। नख से शिख तक सुन्दरता भरी हुई है। इतनी भोली है कि जी चाहता है, घण्टों उसकी बातें सुना करूँ। माधवी ने इससे बहिनापा कर रखा है। कल उनकी गुड़ियों का विवाह है। तुलसी की गुड़िया है और माधवी का गुड्डा। सुनती हूँ बेचरी बहुत निर्धन है। पर मैंने उसके मुख पर कभी उदासी नहीं देखी। कहती थी कि, उपले बेचकर दो रुपये जमा कर लिये हैं। एक रुपया दायज दूँगी और एक रुपये में बरातियों का खाना-पीना होगा। गुड़ियों के वस्त्राभूषण का भार राधा के शिर है। कैसा सरल और संतोषमय जीवन है?

लो अब विदा होती हूँ। तुम्हारा समय निरर्थक बातों में नष्ट हुआ। क्षमा करना। तुम्हें पत्र लिखने बैठती हूँ तो लेखनी ही नहीं रुकती। अभी बहुतेरी बातें लिखने को पड़ी हैं। प्रतापचन्द्र से मेरी पालागन कह देना।

तुम्हारी, विरजन।'

(३)

‘प्यारे !

मझगाँव ।

तुम्हारी प्रेम-पत्रिका मिली । छाती से लगाई । वाह ! चोरी और मुँहजोरी । अपने न आने का दोष मेरे शिर धरते हो ? मेरे मन से कोई पूछे कि तुम्हारे दर्शन की उसे कितनी अभिलाषा है ? अब यह अभिलाषा प्रति-दिन व्याकुलता के रूप में परिणत होती जाती है । कभी-कभी बेसुध हो जाती हूँ । मेरी यह दशा थोड़े ही दिनों से होने लगी है । जिस समय यहाँ से गये हो, मुझे ज्ञात न था कि वहाँ जाकर मेरी दलेल करोगे । खैर तुम्हीं सच और मैं ही झूठ । मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि तुमने मेरे दोनों पत्र पसन्द किये । पर प्रतापचन्द्र को व्यार्थ दिखाये । वे पत्र बड़ी असावधानी से लिखे गये हैं । सम्भव है कि, अशुद्धियाँ रह गई हों । मुझे विश्वास नहीं आता कि, प्रताप ने उन्हें मूल्यावान् समझा हो । यदि वे मेरे पत्रों का इतना आदर करने हैं कि, उनके सहारे से हमारे ग्राम जीवन पर कोई रोचक निबन्ध लिख सकें तो मैं अपने को परम भाग्यवान् समझती हूँ ।

कल यहाँ देवीजी की पूजा थी । हल, चक्री, पुर, चूल्हे सब बन्द थे । देवीजी की ऐसी ही आज्ञा है । उनकी आज्ञा का उल्लंघन कौन करे ? हुक्का-पानी बन्द हो जाय । साल भर में यही एक दिन है, जिसे गाँववाले भी छुट्टी का समझते हैं । अन्यथा होली-दीवाली भी प्रति-दिन के आवश्यक कामों को नहीं रोक सकती । बकरा चढ़ा । हवन हुआ । सत्तू खिलाया गया । अब गाँव के बच्चे-बच्चे को पूर्ण विश्वास है कि प्लेग का आगमन यहाँ न हो सकेगा । ये सब कौतुक देखकर सोई थी । लगभग बारह बजे होंगे कि सैकड़ों मनुष्य हाथ में मशालें लिये कोलाहल मचाते निकले । और सारे गाँव का फेरा किया । इसका यह अर्थ था कि इस सीमा के भीतर बीमारी पैर न रख सकेगी । फेरे के समाप्त होने पर कई मनुष्य अन्य ग्राम की सीमा में घुस गये और थोड़े से फूल, पान, चावल, लौंग आदि पदार्थ पृथ्वी पर रख आये । अर्थात् अपने ग्राम की बला दूसरे गाँव के सिर डाल आये । जब ये

लोग अपना कार्य समाप्त करके वहाँ से चलने लगे तो उस ग्रामवालों को सुनगुन मिल गई। सैकड़ों मनुष्य लाठियाँ लेकर चढ़ दौड़े। दोनों पक्षवालों में खूब मार-पीट हुई। इस समय गाँव के कई मनुष्य हल्दी पी रहे हैं।

आज प्रातःकाल कल की बची-बचाई रसमें पूरी हुई। जिनको यहाँ कढ़ाई देना कहते हैं। मेरे द्वार पर एक भट्ठा खोदा गया और उस पर एक कड़ाह दूध से भरा हुआ रखा गया। काशी नाम का एक भर है। वह शरीर में भभूत रमाये आया। गाँव के आदमी टाट पर बैठे। शंख बजाने लगा। कड़ाह के चतुर्दिक् माला-फूल बिखेर दिये गये। जब कड़ाह में खूब उबाल आया तो काशी झट उठा और जय कालीजी की कहकर कड़ाह में कूद पड़ा। मैं तो समझी अब यह जीवित न निकलेगा। पर पाँच मिनट पश्चात् काशी ने फिर छल्लांग मारी और कड़ाह के बाहर था। उसका बाल भी बाँका न हुआ। लोगों ने उसे माला पहनाई। वे कर बाँधकर पूछने लगे:—‘महाराज ! अबके वर्ष खेती की उपज कैसी होगी ? पानी कैसा बरसेगा ? बीमारी आवेगी या नहीं ? गाँव के लोग कुशल से रहेंगे ? गुड़ का भाव कैसा रहेगा ?’ आदि। काशी ने इन सब प्रश्नों के उत्तर स्पष्ट पर किञ्चित् रहस्यपूर्ण शब्दों में दिये। इसके पश्चात् सभा विसर्जन हुई। सुनती हूँ, ऐसी सभा प्रति वर्ष होती है। काशी की भविष्यवाणियाँ सब सत्य सिद्ध होती हैं। और कभी एक आध असत्य भी निकल जाय तो काशी उनका समाधान भी बड़ी योग्यता से कर देता है। काशी बड़ी पहुँच का आदमी है। गाँव में कहीं चोरी हो, काशी उसका पता लगा देगा। जो कार्य पुलिस के भेदियों से पूरा न हो, उसे वह पूरा कर देता है। यद्यपि वह जाति का भर है ; परन्तु गाँव में उसका बड़ा आदर है। इन सब भक्तियों का पुरस्कार वह मदिरा के अतिरिक्त और कुछ नहीं लेता। नाम निकलवाइए पर एक बोतल उसकी भेट कीजिए। आपका अभियोग न्यायालय में है। काशी उसके विजय का अनुष्ठान कर रहा है। बस आप उसे एक बोतल लाल जल दीजिए।

होली का समय अति निकट है। एक सप्ताह से अधिक नहीं। अहा ! मेरा हृदय इस समय कैसा लिख रहा है ? मन में आनन्द-प्रद गुदगुदी हो रही है। आँखें तुम्हें देखने के लिए अकुला रही हैं। यह सप्ताह बड़ी कठिनाइयों से कटेगा। तब मैं अपने पिया के दर्शन पाऊँगी।

तुम्हारी, विरजन।'

(४)

‘प्यारे

मझगाँव।

तुम पापाणहृदय हो ! कट्टर हो ! स्नेह-हीन हो ! निर्दयी हो ! अकरुण हो ! झूठे हो ! मैं तुम्हें और क्या गालियाँ दूँ और क्या कोसूँ ? यदि तुम इस क्षण मेरे सम्मुख होते तो इस वज्रहृदयता का उत्तर देती। मैं कह रही हूँ तुम दगाबाज हो। मेरा क्या कर लोगे ? नहीं आते तो, मत आओ। मेरा प्राण लेना चाहते हो ले लो। रुलाने की इच्छा है, रुलाओ। पर मैं क्यों रोऊँ ? मेरी बला रोवे। जब आपको इतना ध्यान नहीं कि दो घण्टे की यात्रा है, तनिक उसकी सुध लेता आऊँ तो मुझे क्या पड़ी है कि, रोऊँ और प्राण खोऊँ ?

ऐसा क्रोध आ रहा है कि पत्र फाड़कर फेंक दूँ और फिर तुमसे बात न करूँ। हा ! तुमने मेरी सारी अभिलाषाएँ कैसे धूल में मिलाई हैं ? होली ! होली ! किसी के मुख से यह शब्द निकला और मेरे हृदय गुदगुदी होने लगी, पर शोक ! होली बीत गई और मैं निराश रह गई। पहिले यह शब्द सुनकर आनन्द होता था। अब दुःख होता है। अपना-अपना भाग्य है। गाँव के भूखे-नंगे लँगोटी में फाग खेलें, आनन्द मनावें, रंग उड़ावें और मैं अभागिनी अपनी चारपाई पर सफेद साड़ी पहिने पड़ी रहूँ। शपथ ले लो जो उस पर एक लाल धब्बा भी पड़ा हो। शपथ ले लो जो मैंने अबीर और गुलाब हाथ से छूई भी हो। मेरी इत्र में बसी हुई अबीर, केवड़े में घोली गुलाल, रचकर बनाये हुए पान, सब तुम्हारी अकृपा का रोना रो रहे हैं। माधवी ने जब बहुत हठ की तो मैंने एक लाल टीका लगवा लिया। पर आज से इन दोषा-

रोपणों का अन्त होता है। यदि फिर कोई शब्द दोषारोपण का मुख से निकला तो जवान काट लूँगी।

परसों सायङ्काल ही से गाँव में चहल-पहल मचने लगी। नव-युवकों का एक दल हाथ में डफ लिये, अश्लील शब्द बकते, द्वार-द्वार फेरी लगाने लगा। मुझे ज्ञात न था कि, आज यहाँ इतनी गालियाँ खानी पड़ेंगी। लज्जाहीन शब्द उनके मुख से इस प्रकार वेधड़क निकलते थे, जैसे फल झड़ते हों। लज्जा और सङ्कोच का नाम न था। पिता पुत्र के सम्मुख और पुत्र पिता के सम्मुख गालियाँ बक रहे थे। पिता ललकारकर पुत्र-वधू से कहता है—‘आज होली है!’ वधू घर में शिर नीचा किये हुए सुनती है और मुसकुरा देती है। हमारे पटवारी साहब तो एक ही महात्मा निकले। आप मदिरा में मस्त, एक मैली-सी टोपी शिर पर रखे इस दल के नायक थे। उनकी बहू-बेटियाँ उनकी अश्लीलता के वेग से न बच सकीं। गालियाँ खाओ और हँसो। यदि वदन पर तनिक भी मैल आये तो लोग समझेंगे कि, इसका मुहर्म्म का जन्म है। भली प्रथा है?

लगभग तीन बजे रात्रि के यह झुंडा होली माता के पास पहुँचा। लड़के अग्निक्रीड़ादि में तत्पर थे। मैं भी कई स्त्रियों के साथ गई, वहाँ स्त्रियाँ एक ओर होलियाँ गा रही थीं। निदान होली में आग लगाने का समय आया। अग्नि लगते ही ज्वाला भड़की। और सारा आकाश स्वर्णवर्ण हो गया। दूर-दूर तक के पेड़-पत्ते प्रकाशित हो गये। अब इस अग्नि राशि के चारों ओर लोग ‘होली माता की जय!’ चिल्ला-चिल्लाकर दौड़ने लगे। सबके हाथों में गेहूँ और जौ की बालियाँ थीं, जिसको वे इस अग्नि में फेंकते जाते थे।

अब ज्वाला बहुत उत्तेजित हुई तो लोग एक किनारे खड़े होकर ‘कबीर’ कहने लगे। छः घण्टे तक यही दशा रही। लकड़ी के कुन्दों से चटाक-पटाक के शब्द निकल रहे थे। पशुगण अपने-अपने खूंटों पर मारे भय के चिल्ला रहे थे। तुलसा ने मुझसे कहा—‘अबकी होली की ज्वाला टेढ़ी जा रही है। कुशल नहीं। जब ज्वाला सीधी जाती है,

गाँव में साल भर आनन्द की बधाई बजती है। परन्तु ज्वाला का टेढ़ी होना अशुभ है।” निदान लपट कम होने लगी। आँच की प्रखरता मन्द हुई। तब कुछ लोग होली के निकट आकर ध्यान-पूर्वक देखने लगे। जैसे कोई वस्तु ढूँढ़ रहे हों। तुलसा ने बतलाया कि जब बसन्त के दिन होली की नींव पड़ती है तो पहिले एक एरण्ड गाड़ देते हैं। उसी पर लकड़ी और उपलों का ढेर लगाया जाता है। इस समय लोग उसी एरण्ड के पौधे को ढूँढ़ रहे हैं। उस मनुष्य की गणना वीरों में होती है जो सबसे पहिले उस पौधे पर ऐसा लक्ष करे कि वह टूटकर दूर जा गिरे। प्रथम पटवारी साहब पैतरे बदलते आये, पर दस गज की दूरी से झाँककर चल दिये। तब राधा हाथ में एक छोटा-सा सोटा लिये साहस और दृढ़ता-पूर्वक आगे बढ़ा और आग में घुसकर वह भरपूर हाथ लगाया कि पौधा अलग जा गिरा। लोग उन टुकड़ों को लट्टने लगे। माथे पर उसका टीका लगाते हैं और उसे शुभ समझते हैं।

यहाँ से अवकाश पाकर यह पुरुषमण्डली देवीजी के चबूतरे की ओर बढ़ी। पर यह न समझना यहाँ देवीजी की प्रतिष्ठा की गई होगी। आज वे भी गालियाँ सुनना पसन्द करती हैं। छोटे बड़े सब उन्हें अडलील सुना रहे थे। अभी थोड़े दिन हुए उन्हीं देवीजी की पूजा हुई थी। सच तो यह है कि, गाँवों में आजकल ईश्वर को गाली देना भी क्षम्य है। माता बहिनों की तो कीई गणना ही नहीं।

प्रभात होते ही लाला ने महाराज से कहा:—“आज कोई दो सेर भङ्ग पिसवा लो। दो प्रकार की अलग अलग बनवा लो। सलोनी और मीठी।” महाराज निकले और कई मनुष्यों को पकड़ लाये। भाँग पीसी जाने लगी। बहुत से कुल्हड़ मँगाकर क्रम-पूर्वक रखे गये। दो घड़ों में दोनों प्रकार की भाँग रखी गई। फिर क्या था, तीन-चार घण्टे तक पियूझों का ताँता लगा रहा। लोग खूब बखान करते और गर्दन हिला-हिलाकर महाराज की कुशलता की प्रशंसा करते थे। जहाँ किसी ने बखान किया कि, महाराज ने दूसरा कुल्हड़ भरा और बोले:—

“यह सलोनी है। इसका भी स्वाद चख लो। अजी पी भी लो। क्या दिन दिन होली आयेगी कि सब दिन हमारे हाथ की बूटी मिलेगी?” इसके उत्तर में किसान ऐसी दृष्टि से ताकता था, मानो किसी ने उसे सजीवन रस दे दिया। और एक की जगह तीन-तीन कुल्हड़ चट कर जाता। पटवारी के जामाता मुंशी जगदम्बाप्रसाद साहब का शुभागमन हुआ है। आप कचहरी में अरायजनबीस हैं। उन्हें महाराज ने इतनी पिला दी कि आपसे बाहर हो गये और नाचने-कूदने लगे। सारा गाँव उनसे पदोरी करता था। एक किसान आता है और उनकी ओर मुसकुराकर कहता है,—“तुम यहाँ ठाढ़ी हो, घर जाके भोजन बनाओ हम आवत हैं।” इसपर बड़े जोर की हँसी होती है। काशी भर मद से मात्ता हुआ लट्ट कन्धे पर रखे आता और सभास्थित जनों की ओर मनावटी क्रोध से देखकर गरजता है—“महाराज; यह अच्छी बात नहीं है कि, तुम हमार नई बहुरिया से मजा लूत हो।” यह कहकर मुंशीजी को छाती से लगा लेता है।

मुंशीजी बेचारे छोटे कद के मनुष्य, इधर-उधर फड़फड़ाते हैं, पर नक्कारखाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता है? कोई उन्हें प्यार करता है और कोई गले लगाता है। दोपहर तक यही छेड़-छाड़ हुआ की। तुलसा अभी तक बैठी हुई थी। मैंने उससे कहा:—“आज हमारे यहाँ तुम्हारा न्योता है। हम तुम संग संग खायँगी।” यह सुनते ही महाराजिन दो थालियों में भोजन परोसकर लाई। तुलसा इस समय खिड़की की ओर मुँह करके खड़ी थी। मैंने जो उसको हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचा तो उसे अपनी प्यारी-प्यारी आँखों से मोती के दाने बिखेरते हुए पाया। मैं उसे गले लगाकर बोली:—“सखी, सच सच बतला दो, क्यों रोती हो? हमसे कोई दुराव मत रखो?” इस पर वह और भी सिसकने लगी। जब मैंने बहुत हठ की, तो उसने शर घुमाकर कहा:—“बहिन! आज प्रातःकाल उनपर निशान पड़ गया। न जाने उनपर क्या बीत रही होगी?” यह कहकर वह फूट-फूटकर रोने लगी। ज्ञात हुआ कि, राधा के पिता ने कुछ ऋण लिया

था। वह अभी तक चुका न सका था। महाजन ने सोचा कि, इसे हवालात ले चढ़ूँ तो रुपये वसूल हो जायँ। राधा कन्नौ काटता फिरता था। आज द्वेपियों को अवसर मिल गया और वे अपना काम कर गये। शोक ! मूल धन बीस रुपये से अधिक न था। प्रथम मुझे ज्ञात होता तो बेचारे पर त्योहार के दिन यह आपत्ति न आने पाती। मैंने चुपके से महाराज को बुलाया और उन्हें बीस रुपये देकर राधा को छुड़ाने के लिए भेजा।

उस समय मेरे द्वार पर एक टाट बिछा दिया गया था। लालाजी मध्य में कालीन पर बैठे थे। किसान लोग घुटने तक धोतियाँ बाँधे, कोई कुर्ता पहिने, कोई नग्न देह, कोई शिर पर पगड़ी बाँधे और कोई नंगे शिर मुख पर अबीर लगाये—जो उनके काले वर्ण पर विशेष छटा दिखा रही थी—आने लगे। जो आता लालाजी के पैरों पर थोड़ी सी अबीर रख देता। लालाजी भी अपनी तश्तरी में से थोड़ी-सी अबीर निकालकर उसके माथे पर लगा देते और मुसकराकर कोई दिल्लगी की बात कह देते थे। वह निहाल हो जाता, सादर प्रणाम करता और ऐसा प्रसन्न होकर आ बैठता, मानो किसी रंक ने रत्नराशि पाई है। मुझे स्वप्न में भी ध्यान न था कि, लालाजी इन उजड़ू देहातियों के साथ बैठकर ऐसे आनन्द से वार्तालाप कर सकते हैं ! इसी बीच में काशी भर आया। उसके हाथ में एक छोटी-सी कटोरी थी। उसमें अबीरलिये हुए था। उसने अन्य लोगों की भाँति लालाजी के चरणों पर अबीर नहीं रखी। किन्तु बड़ी धृष्टता से मुट्ठी भर लेकर उनके मुख पर भली भाँति मल दी। मैं तो डरी, कहीं लालाजी रुष्ट न हो जायँ। पर वे बहुत प्रसन्न हुए और स्वयं उन्होंने भी एक टीका लगाने के स्थान पर दोनों हाथों से उसके मुख पर अबीर मली। उसके साथी उसकी ओर इस दृष्टि से देखते थे कि निस्सन्देह तू वीर है और इस योग्य है कि हमारा नायक बने। इसी प्रकार एक-एक करके दो ढाई सौ मनुष्य एकत्रित हुए। अचानक उन्होंने कहा:—“आज कहीं राधा नहीं देख पड़ता, क्या बात है ? कोई उसके घर जाके देखे तो।” मुंशी जगदम्बा-प्रसाद अपनी योग्यता प्रकाशित करने का अच्छा अवसर देखकर बोल

उठे:—“हुजूर, वह दफा १३ नं० अलिफ एक्ट (ब) में गिरफ्तार हो गया।” रामदीन पांडे ने वारण्ट जारी करा दिया था। हरीच्छा से रामदीन पाण्डे भी वहाँ बैठे हुए थे। लाला ने उनकी ओर परम तिरस्कार पूर्ण दृष्टि से देखा और कहा:—“क्यों पाँडेजी, इस दीन को बन्दी-गृह में बन्द करने से तुम्हारा घर भर जायगा ? यही मनुष्यत्व और शिष्टता अब रह गई है ? तुम्हें तनिक भी दया न आई कि आज होली के दिन उसे स्त्री और बच्चों से अलग किया। मैं तो सत्य कहता हूँ कि, यदि मैं राधा होता तो बन्दीगृह से लौटकर मेरा प्रथम उद्योग यही होता कि, जिसने मुझे यह दिन दिखाया है, उसे मैं भी कुछ दिनों हल्दी पिलवा दूँ। तुम्हें लाज नहीं आती कि, इतने बड़े महाजन होकर तुमने बीस रुपये के लिए एक दीन मनुष्य को इस प्रकार कष्ट में डाला। डूब मरना था ऐसे लोभ पर।” लालाजी को वस्तुतः क्रोध आ गया था। रामदीन ऐसा लज्जित हुआ कि सब सिट्ठी-पिट्ठी भूल गई। मुख से बात न निकली। चुपके से न्यायालय की ओर चला। सबके सब कृषक उसकी ओर क्रोध-पूर्ण दृष्टि से देख रहे थे। यदि लालाजी का भय न होता तो पाँडेजी की हड्डी-पसली वहीं चूर हो जाती।

इसके पश्चात् लोगों ने गाना आरम्भ किया। मद में तो सबके सब माते ही थे, इसपर लालाजी के इस भ्रातृभाव के सम्मान से उनके मन और भी उत्साहित हो गये। खूब जी तोड़कर गाये। डफें तो इतने जोर से बजती थीं कि, अब फटीं और अब फटीं। जगदम्बाप्रसाद ने दुहरा नशा चढ़ाया था। कुछ तो उनके मन में स्वतः उमंग उत्पन्न हुई, कुछ दूसरों ने उत्तेजना दी। आप मध्य सभा में खड़े होकर नाचने लगे; विश्वास मानो नाचने लगे। मैंने अचकन, टोपी, धोती और मूछों-वाले पुरुष को नाचते न देखा था। आध घण्टे तक वे बन्दरों की भाँति उछलते-कूदते रहे। निदान मद ने उन्हें पृथ्वी पर लिटा दिया। तत्पश्चात् एक और अहीर उठा। एक अहीरिन की स्त्री मण्डली से निकली और दोनों चौक में जाकर नाचने लगे। दोनों नवयुवक और फुरतीले थे। उनकी कमर और पीठ की लचक विलक्षण थी। उनके

हाव-भाव, कमर का लचकना, रोम-रोम का फड़कना, गर्दन का मोड़, अङ्गों का मरोड़ देखकर विस्मय होता था। बहुत अभ्यास और परिश्रम का कार्य है।

अभी यहाँ नाच ही हो रहा था कि सामने बहुत से मनुष्य लम्बी लम्बी लाठियाँ कन्धों पर रखे आते दिखाई दिये। उनके सग डफ भी था ! कई मनुष्य हाथों में झाँझ और मंजीरे लिये हुए थे। वे गाते-बजाते आये और हमारे द्वार पर रुके। अकस्मात् तीन-चार मनुष्यों ने मिलकर ऐसे आकाशभेदी शब्दों में “अररररर...कबीर” की ध्वनि लगाई कि घर काँप उठा। लालाजी निकले। ये लोग उसी गाँव के थे, जहाँ निकासी के दिन लाठियाँ चली थीं। लालाजी को देखते ही कई पुरुषों ने उनके मुख पर अवीर मला। लालाजी ने भी प्रति उत्तर दिया। फिर लोग फर्श पर बैठे। इलायची और पान से उनका सम्मान किया गया। फिर गाना हुआ। इस गाँववालों ने भी अवीर मलें और मलवाईं। जब ये लोग विदा होने लगे, तो यह होली गाई।

“सदा आनन्द रहे एहि द्वारे मोहन खेले होरी।”

कितना सुहावना गीत है ? मुझे तो इसमें रस और भाव कूट-कूट-कर भरा हुआ प्रतीत होता है। होली का भाव कैसे साधारण और संक्षिप्त शब्दों में प्रकट कर दिया गया है। मैं बारम्बार यह प्यारा गीत गाती हूँ और आनन्द लूटती हूँ। होली का त्योहार परस्पर प्रेम और मेल बढ़ाने के लिए है। सम्भव न था कि वे ही लोग जिनसे कुछ दिन पहिले लाठियाँ चली थीं, इस गाँव में इस प्रकार बेधड़क चले आते। पर यह होली का दिन है। आज किसी को किसी से द्वेष नहीं है। आज प्रेम और आनन्द का स्वराज्य है। आज के दिन यदि दुखो हो तो परदेशी बालम की अबला। रोवे तो युवती विधवा। इनके अतिरिक्त और सबके लिए आनन्द की बधाई है।

सन्ध्या समय गाँव की सब स्त्रियाँ हमारे यहाँ होली खेलने आईं। माताजी ने उन्हें बड़े आदर से बिठाया। रंग खेला, पान बाँटा। मैं मारे भय के बाहर न निकली। इस प्रकार लुट्टी मिली। अब मुझे ध्यान

आया की माधवी दो पहर से गायब है। मैंने सोचा था स्यात् गाँव में होली खेलने गई हो। परन्तु इन स्त्रियोंके संग वह न थी। तुलसा अभी तक चुपचाप खिड़की की ओर मुँह किये बैठी थी। दीपक में बत्ती पड़ रही थी कि वह अकस्मात् उठी, मेरे चरणों पर गिर पड़ी और फूट-फूटकर रोने लगी। मैंने खिड़की की ओर झाँका तो देखती हूँ कि आगे आगे महाराज, उनके पीछे राधा और सबसे पीछे रामदीन पाँड़े चले आ रहे हैं। गाँव के बहुत से आदमी उनके सङ्ग हैं। राधा का बदन कुम्हलाया हुआ है। लालाजी ने ज्यों ही सुना कि, राधा आ गया, चट बाहर निकल आये और बड़े स्नेह से उसको कण्ठ से लगा लिया। जैसे कोई अपने पुत्र को गले लगाता है। राधा चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा। तुलसा से भी न रहा गया। वह सिद्धियोंसे उतरी और लालाजी के चरणों पर गिर पड़ी। लालाजी ने उसे भी बड़े प्रेम से उठाया। मेरी आँखों में भी उस समय आँसू न रुक सके। गाँव के बहुत से मनुष्य रो रहे थे। बड़ा करुणापूर्ण दृश्य था। लालाजी के नेत्रों में मैंने कभी आँसू न देखे थे। वे इस समय देखे। रामदीन पाण्डेय मस्तक झुकाये ऐसा खड़ा था, मानों गोहत्या की हो। उसने कहा:—“मेरे रुपये भिल गये पर इच्छा है, इनसे तुलसा के लिए एक गाय ले दूँ।”

राधा और तुलसा दोनों अपने घर गये। परन्तु थोड़ी देर में तुलसा माधवी का हाथ पकड़े हँसती हुई मेरे घर आई और बोली:—“इनसे पूछो ये अब तक कहाँ थीं?”

मैं—कहाँ थी? दोपहर से गायब हो।

माधवी—यहीं तो थी।

मैं—यहाँ कहाँ थी? मैंने तो दोपहर से नहीं देखा। सच-सच बता दो, मैं रुष्ट न होऊँगी।

माधवी—तुलसा के घर तो चली गई थी।

मैं—तुलसा तो यहाँ बैठी है, वहाँ अकेली क्या सोती रहीं?

तुलसा—(हँसकर) सोती काहे को जागती रहीं। भोजन बनाती रहीं बरतन-चौका करती रहीं।

माधवी—हाँ चौका-बरतन करती रही। कोई तुम्हारा नौकर लगा हुआ है न !

ज्ञात हुआ कि जबसे मैंने महाराज को राधा को छुड़ाने के लिए भेजा था, तबसे माधवी तुलसा के घर भोजन बनाने में लीन रही। उसके किवाड़ खोले। यहाँ से आटा, घी, शक्कर सब ले गई। आग जलाई और पूड़ियाँ, कचौड़ियाँ, गुलगुले और मीठे समोसे सब बनाये। उसने सोचा था कि, मैं यह सब बनाकर चुपके से चली जाऊँगी ! जब राधा और तुलसा आयेंगे तो विस्मित होंगे कि कौन बना गया ! पर म्यात्त विलम्ब अधिक हो गया और अपराधी पकड़ लिया गया। देखा कैसी मुशीला बाला है !

अब विदा होती हूँ। अपराध क्षमा करना। तुम्हारी चेरी हूँ ! जैसे रगोगे वैसे रहूँगी। यह अवीर और गुलाल भेजती हूँ। यह तुम्हारी दासी का उपहार है। तुम्हें हमारी शपथ मिथ्या सभ्यता के उमङ्ग में आकर इसे फेंक न देना, नहीं तो मेरा हृदय दुखी होगा।

तुम्हारी, विरजन।”

(५)

“प्यारे !

मझगाँव।

तुम्हारे पत्र ने बहुत रुलाया। अब नहीं रहा जाता। मुझे बुला लो। एक बार देखकर चली आऊँगी। सच बताओ, यदि मैं तुम्हारे यहाँ आ जाऊँ तो हँसी तो न उड़ाओगे। न जाने मन में क्या समझोगे ? पर कैसे आऊँ ? तुम लालाजी को लिखो, खूब ! वे कहेंगे यह नई धुन समझ है।

कल चारपाई पर पड़ी थी, भोर हो गया था, शीतल मन्द पवन चल रहा था कि स्त्रियों के गाने का शब्द सुनाई पड़ा। स्त्रियाँ अनाज का खेत काटने जा रही थीं। झाँककर देखा तो दस-दस बारह-बारह स्त्रियों का एक-एक गोल था। सबके हाथों में हँसिया, कन्धों पर गठियाँ बाँधने की रस्सी और सिर पर भुने हुए मटर की छबड़ी थी। ये इस

समय जाती हैं, कहीं बारह बजे लौटेंगी। आपस में गाती, चुहुलें करती चली जाती थीं।

दोपहर तक बड़ी कुशलता रही। अचानक आकाश मेघाच्छन्न हो गया। आँधी आ गई और ओले गिरने लगे! मैंने इतने बड़े ओले गिरते न देखे थे। आलू से बड़े और ऐसी तेजी से गिरे जैसे बन्दूक से गोली। क्षण भर में पृथ्वी पर एक फुट ऊँचा बिछावन बिछ गया। चारों तरफ से कृषक भागने लगे। गाये, बकरियाँ, भेड़ें सब चिल्लाती हुई पेड़ों की छाया ढूँढ़ती फिरती थीं। मैं डरी न जाने तुलसा पर क्या बीती। आँखें फैलाकर देखा तो खुले मैदान में तुलसा, राधा और मोहनी गाय देख पड़ीं। तीनों घमसान ओले की मार में पड़े थे। तुलसा के शिर पर एक छोटी-सी टोकरी थी, और राधा के शिर पर एक बड़ा-सा गट्टा। मेरे नेत्रों में आसू भर आये कि न जाने इन बेचारों की क्या गति होगी। अकस्मात् एक प्रखर झोंके ने राधा के शिर से गट्टा गिरा दिया। गट्टा का गिरना था कि झट तुलसा ने अपनी टोकरी उसके शिर पर औँधा दी। न जाने उस पुष्प ऐसे सिर पर कितने ओले पड़े। उसके हाथ कभी पीठ पर जाते। शिर सुहलाते अभी एक सेकेण्ड से अधिक यह दशा न रही होगी कि राधा ने बिजली की भाँति लपककर गट्टा उठा लिया और टोकरी तुलसा को दे दी। कैसा घना प्रेम है!

अनर्थकारी दुर्दैव ने सारा खेल बिगाड़ दिया। प्रातःकाल स्त्रियाँ गाती हुई जा रही थीं। सन्ध्या को घर-घर शोक छाया हुआ था। कितनों के सिर लोह-लुहान हो गये, कितने हल्दी पी रहे हैं। खेती सत्यानाश हो गई। अनाज बर्फ के तले दब गया। ज्वर का प्रकोप है। सारा गाँव अस्पताल बना हुआ है। काशी भर का भविष्य वचन प्रमाणित हुआ। होली की ज्वाला का भेद प्रकट हो गया। खेती की यह दशा और लगान उगाही जा रही है। बड़ी विपत्ति का सामना है। मार-पीट गाली अपशब्द सभी साधनों से काम लिया जा रहा है। दीनों पर यह दैवी कोप!

तुम्हारी, विरजन।'

(६)

“मेरे प्राणाधिक प्रियतम !

मङ्गगाँव ।

पूरे पन्द्रह दिन के पश्चात् तुमने विरजन की सुध ली । पत्र को बारम्बार पढ़ा । तुम्हारा पत्र रूलाये बिना नहीं मानता । मैं यों भी बहुत रोया करती हूँ । तुमको किन-किन बातों की सुध दिलाऊँ ? मेरा हृदय ऐसा निर्बल है कि जब कभी इन बातों की ओर ध्यान जाता है तो विचित्र दशा हो जाती है । गर्मी-सी लगती है । एक बड़ी व्यग्र करनेवाली, बड़ी स्वादिष्ट, बहुत रूलानेवाली, बहुत दुराशापूर्ण वेदना उत्पन्न होती है । जानती हूँ कि तुम नहीं आ रहे, नहीं आओगे पर बार-बार द्वार पर जाकर खड़ी हो जाती हूँ कि आ तो नहीं गये ।

कल सायंकाल यहाँ एक बड़ा चित्ताकर्षक प्रहसन देखने में आया । यह धोवियों का नाच था । पन्द्रह-बीस मनुष्य का एक समुदाय था । उसमें एक नवयुवक श्वेत पेशवाज पहिने, कमर में असंख्य घंटियाँ बाँधे, पाँय में घुँघरू पहिने, शिर पर लाल टोपी रखे नाच रहा था । जब पुरुष नाचता था तो मृदंग बजने लगती थी । ज्ञात हुआ कि ये लोग होली का पुरस्कार माँगने आये हैं । यह जाति पुरस्कार खूब लेती है । आपके यहाँ कोई काम-काज पड़े, उन्हें पुरस्कार दीजिए और उनके यहाँ कोई काम-काज पड़े तो भी उन्हें पारितोषिक मिलना चाहिए । ये लोग नाचते समय गीत नहीं गाते । इनका गाना इनकी कविता है । पेशवाजवाला पुरुष मृदंग पर हाथ रखकर एक विरह कहता है । दूसरा पुरुष सामने से आकर उसका प्रत्युत्तर देता है । और दोनों तत्क्षण यह विरहा रचते हैं । इस जाति में कवित्व-शक्ति अत्यधिक है । इन विरहों को ध्यान से सुनो तो उनमें बहुधा उत्तम कवित्व-भाव प्रकट किये जाते हैं । पेशवाजवाले पुरुष ने प्रथम जो विरहा कहा था उसका अर्थ यह था कि, ऐ धोबी के बच्चे ! तुम किसके द्वार पर आकर खड़े हो ? दूसरे ने उत्तर दिया,—अब न अकबर शाह है, न राजा भोज, अब जो हैं हमारे मालिक हैं, उन्हीं से माँगो । तीसरे विरहे का अर्थ यह है कि, याचकों की प्रतिष्ठा कम होती

है, अतएव कुछ मत माँगो, गा-बजाकर चले चलो, देनेवाला बिन माँगे ही देगा। घण्टे भर से ये लोग विरहे कहते रहे। तुम्हें प्रतीत न होगी, उनके मुख से विरहे इस प्रकार बेधड़क निकलते थे कि आश्चर्य होता था। स्यात् इतनी सुगमता से वे बातें भी न कर सकते हों। यह जाति बड़ी पियकड़ है। मदिरा पानी की भाँति पीती है। विवाह में मदिरा, गौने में मदिरा, पञ्चाइत में मदिरा, पूजा-पाठ में मदिरा, पुरस्कार माँगेंगे तो पीने के लिए। धुलाई माँगेंगे तो यह कहकर कि, आज पीने के पैसे नहीं हैं। विदा होते समय बेचू धोबी ने जो विरहा कहा था, वह काव्यालंकार से भरा हुआ है।

“तुम्हारा परिवार इस प्रकार बढ़े जैसे गंगाजी का जल। लड़के फूलें फूलें, जैसे आम का बौर। मालकिन का सोहाग सदा बना रहे जैसे दूब की हरियाली।” कैसी अनोखी कविता है!

तुम्हारी, विरजन।”

(७)

“प्यारे !

मझगाँव।

एक सप्ताह तक चुपचाप रहने की क्षमा चाहती हूँ। मुझे इस सप्ताह में तनिक भी अवकाश न मिला। माधवी बीमार हो गई थी, पहिले तो कुनैन की कई पुड़िया खिलाई गई। पर जब इससे लाभ न हुआ और उसकी दशा और भी बुरी होने लगी, तो दिहलूराय वैद्य बुलाये गये। कोई पचास वर्ष की आयु होगी। नंगे पाँव शिर पर एक पगड़ी बाँधे कन्धे पर अँगोछा रख, हाथ में मोटा-सा सोटा लिये द्वार पर आकर बैठ गये। घर के बड़े जमीन्दार हैं, पर किसी ने उनके शरीर पर मिर्जई तक नहीं देखी। उन्हें इतना अवकाश ही नहीं कि, अपने शरीरपालन की ओर ध्यान दें। इस मंडल में आठ दस कोस तक लोग उनपर विश्वास करते हैं। न वे हकीम को जानें, न डॉक्टर को। उनके हकीम डॉक्टर जो कुछ हैं, वे दिहलूराय हैं। सन्देशा सुनते ही आकर द्वार पर बैठ गये। डॉक्टरों की भाँति नहीं कि प्रथम

सवारी मांगेंगे। वह भी तेज जिसमें उनका समय नष्ट न हो। आपके घर आकर ऐसे बैठ रहेंगे, मानो गूँगे का गुड़ खा गये हैं। रोगी को देखने जायँगे तो इस प्रकार भागेंगे मानो कमरे की वायु में विष भरा हुआ है। रोगपरिचय और औषध का उपचार केवल दो मिनट में समाप्त। दिहलूगय डॉक्टर नहीं हैं, पर जितने मनुष्यों को उनसे लाभ पहुँचता है, उनकी सख्या का अनुमान करना कठिन है। ले सहानुभूति की मूर्ति हैं। उन्हें देखते ही रोगी का आधा रोग दूर हो जाता है। उनकी औषधियाँ ऐसी सुगम और साधारण होती हैं कि बिना पैसा कौड़ी मनो बटोर लाइए। तीन ही दिन में माधवी चलने-फिरने लगी। वस्तुतः उस वैद्य की औषधि में चमत्कार है।

यहाँ इन दिनों मुगलिये उधम मचा रहें हैं। ये लोग जाड़े में कपड़े उधार दे जाते हैं और चैत में दाम वसूल करते हैं। उस समय कोई बहाना नहीं सुनते गाली-गलौज मार-पीट सभी बातों पर उतर आते हैं। दो-तीन मनुष्यों को बहुत मारा। राधा ने भी कुछ कपड़े लिये थे। उसके द्वार पर जाकर सबके सब गालियाँ देने लगे। तुलसा ने भीतर से किवाड़ बन्द कर दिये। जब इस प्रकार वश न चला, तो एक मोहनी गाय को खूटे से खोलकर खींचते हुए ले चला। इतने में राधा दूर से आता दिखाई दिया। आते ही आते उसने लाठी का वह हाथ मारा कि एक मुगलिये की कलाई लटक पड़ी। तब को मुगलिये कुपित हुए, पैतरे बदलने लगे। राधा भी जान पर खेल गया। और तीन दुष्टों को बेकाम कर दिया। इतने में काशी भर ने आकर एक मुगलिये की खबर ली। दिहलूराय को मुगलियों से चिढ़ है। साभिमान कहा करते हैं कि मैंने इनके इतने रुपये डुबा दिये, इतनों को पिटवा दिया कि जिसका हिसाब नहीं। यह कोलाहल सुनते ही वे भी पहुँच गये। फिर तो सैकड़ों मनुष्य लाठियाँ ले-लेकर दौड़ पड़े। उन्होंने मुगलियों की भली-भाँति सेवा की। आशा है कि इधर आने का उन्हें अब साहस न होगा।

अब तो मई का मास भी बीत गया। क्या अभी छुट्टी नहीं हुई ?

रात-दिन तुम्हारे आने की प्रतीक्षा है। नगर में बीमारी कम हो गई है। हम लोग बहुत शीघ्र यहाँ से चले जायँगे। शोक ! तुम इस गाँव की सैर न कर सकोगे।

तुम्हारी, विरजन ।'

[१५]

प्रतापचन्द्र और कमलाचरण

प्रतापचन्द्र को प्रयाग कॉलेज में पढ़ते तीन साल हो चुके थे। इतने काल में उसने अपने सह-पाठियों और गुरुजनों की दृष्टि में विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी। कॉलेज के जीवन का कोई ऐसा अङ्ग न था, जहाँ उसकी प्रतिभा न प्रदर्शित हुई हो। प्रोफेसर उस पर अभिमान करते और छात्रगण उसे अपना नेता समझते हैं। जिस प्रकार क्रीड़ा-क्षेत्र में उसका हस्त-लाघव प्रशंसनीय था, उसी प्रकार व्याख्यान-भवन में उसकी योग्यता और सूक्ष्म-दर्शिता प्रमाणित थी। कॉलेज से सम्बद्ध एक मित्र सभा स्थापित की गई थी। नगर के साधारण सभ्य जन, कॉलेज के प्रोफेसर, और छात्रगण सब उसके सभासद थे। प्रताप इस सभा का उज्ज्वल चन्द्र था। यहाँ दैशिक और सामाजिक विषयों पर विचार हुआ करते थे। प्रताप की वक्तृताएँ ऐसी ओजस्विनी और तर्क-पूर्ण होती थीं कि प्रोफेसरों को भी उसके विचार और विषयान्वेषण पर आश्चर्य होता था। उसकी वक्तृता और उसके खेल दोनों ही प्रभाव-पूर्ण होते थे। जिस समय वह अपने साधारण वस्त्र पहिने हुए प्लेटफार्म पर जाता तो सभास्थित लोगों की आँखें उसकी ओर एकटक देखने लगतीं, और चित्त में उत्सुकता और उत्साह की तरंगें उठने लगतीं। उसका वाक्चातुर्य, उसके सङ्केत, उसका मृदुल उच्चारण, उसके अङ्गोपाङ्ग की गति, सभी ऐसे प्रभाव-पूरित होते थे कि, मानों शारदा स्वयं उसकी सहायता करती हैं। जब तक वह प्लेटफार्म पर रहता, सभासदों पर एक मोहिनी-सी छाई रहती, उसका

एक-एक वाक्य हृदय में भिद जाता। और मुख से सहसा “वाह वाह !” के शब्द निकल जाते। इसी विचार से उसकी वक्तृताएँ प्रायः अन्त में हुआ करती थीं, क्योंकि बहुधा श्रोता इसी की वाक्तीक्ष्णता का स्वाद आस्वादन करने के लिए आया करते थे। उसके शब्दों और उच्चारणों में स्वाभिक प्रभाव था। साहित्य और इतिहास उसके अन्वेषण और अध्ययन के विशेष विषय थे। जातियों की उन्नति और अवनति तथा उसके कारण और गति पर वह प्रायः विचार किया करता था। इस समय उसके इस परिश्रम और उद्योग के प्रेरक तथा वर्धक, विशेषकर श्रोताओं के साधुवाद ही होते थे और उन्हीं को वह अपने कठिन परिश्रम का पुरस्कार समझता था। हाँ, उसके उत्साह की यह गति देखकर यह अनुमान किया जा सकता था कि यह होनहार विरवा आगे चलकर कैसे फल-फूल लायगा और कैसे रंग रूप निकालेगा। अभी तक उसने एक क्षण भर के लिए भी यह ध्यान नहीं किया था कि मेरे आगामी जीवन का क्या स्वरूप होगा। कभी सोचता कि प्रोफेसर हो जाऊँगा और खूब पुस्तकें लिखूँगा ! कभी वकील बनने की भावना करता। कभी सोचता यदि छात्रवृत्ति प्राप्त होगी तो सिविल सर्विस का उद्योग करूँगा। किसी एक ओर मन नहीं टिकता था।

परन्तु प्रतापचन्द्र उन विद्यार्थियों में से न था, जिनका सारा उद्योग वक्तृता और पुस्तकों ही तक परिमित रहता है। उसके समय और योग्यता का एक छोटा भाग जनता के लाभार्थ भी व्यय होता था। उसने प्रकृति से उदार और दयालु हृदय पाया था। और सर्वसाधारण में मिलने-जुलने और काम करने की योग्यता उसे पिता से मिली थी। इन्हीं कार्यों में उसका सदुत्साह पूर्ण रीति से प्रमाणित होता था, बहुधा मन्ध्या समय वह कीडगञ्ज और कटरा की दुर्गन्धिपूर्ण गलियों में घूमता हुआ दिखाई देता, जहाँ विशेषकर नीची जाति के लोग बसते हैं। जिन लोगों की परछाईं से उच्च वर्ण का हिन्दू भागता है, उनके साथ प्रताप दूटी खाट पर बैठकर घंटों बातें करता और यही कारण था कि इन महल्लों के निवासी उसपर प्राण देते थे। प्रमाद और

शारीरिक सुख-प्रलोभ ये दो अवगुण प्रतापचन्द्र में नाममात्र को भी न थे। कोई अनाथ मनुष्य हो प्रताप-उसकी सहायता के लिए तैयार था। कितनी रातें उसने झोपड़ों में कराहते हुए रोगियों के सिरहाने खड़े रहकर काटी थीं। इसी अभिप्राय से उसने जनता के लाभार्थ एक सभा भी स्थापित कर रखी थी, और ढाई वर्ष के स्वल्प समय में ही इस सभा ने जनता की सेवा में इतनी सफलता प्राप्त की थी कि प्रयागवासियों को उससे प्रेम हो गया था।

कमलाचरण जिस समय प्रयाग पहुँचा, प्रतापचन्द्र ने उसका बड़ा आदर किया। समय ने उसके चित्त से द्वेष की ज्वाला शान्त कर दी थी। जिस समय वह विरजन की बीमारी का समाचार पाकर बनारस पहुँचा था और उससे भेट होते ही विरजन की दशा सुधर चली थी, उसी समय से प्रतापचन्द्र को विश्वास हो गया था कि कमलाचरण ने उसके हृदय में वह स्थान नहीं पाया है, जो मेरे लिए सुरक्षित है। यह विचार द्वेषाग्नि को शान्त करने के लिए काफ़ी था, इसके अतिरिक्त उसे प्रायः यह विचार भी उद्दिग्ध किया करता था कि मैं ही सुशीला का प्राणघातक हूँ। मेरी ही कठोर वाणियों ने उस बेचारी का प्राण-घात किया और उसी समय से जब कि सुशीला ने मरते समय रो-रोकर उससे अपने अपराधों की क्षमा माँगी थी, प्रताप ने मन में ठान लिया था कि अवसर मिलेगा तो मैं इस पाप का प्रायश्चित्त अवश्य करूँगा, कमलाचरण के आदर-सत्कार, तथा शिक्षा-सुधार में उसे किसी अंश में प्रयश्चित्त को पूर्ण करने का अपूर्व अवसर प्राप्त हुआ। वह उससे इस प्रकार व्यवहार रखता, जैसे छोटा भाई बड़े भाई के साथ अपने समय का कुछ भाग उसकी सहायता करने में व्यय करता और ऐसी सुगमता से शिक्षक का कर्तव्य पालन करता कि शिक्षा एक रोचक कथा का रूप धारण कर लेती।

परन्तु प्रतापचन्द्र के इन प्रयत्नों के होते हुए भी कमलाचरण का जी यहाँ बहुत घबराता। सारे छात्रावास में उसके स्वभावानुकूल एक मनुष्य भी न था, जिससे वह अपने मन का दुःख कहता। वह प्रताप

से निस्सङ्कोच रहते हुए भी चित्त की बहुत-सी बातें न कहता था। जब निर्जनता से जी अधिक घबराता था विरजन को कोसने लगता कि मेरे शिर पर यह सब आपत्तियाँ उसी की लाई हुई हैं। उसे मुझसे प्रेम नहीं। मुख और लेखन का प्रेम भी कोई प्रेम है? मैं चाहूँ उस पर प्राण ही क्यों न वास्तु, पर उसका प्रेम वाणी और लेखनी से बाहर न निकलेगा। ऐसी मूर्ति के आगे जो पसीजना जानती ही नहीं, शिर पटकने में क्या लाभ। इन विचारों ने यहाँ तक जोर पकड़ा कि उसने विरजन को पत्र लिखना भी त्याग दिया। वह बेचारी अपने पत्रों में कलेजा निकालकर रख देती, पर कमला उत्तर तक न देता। यदि देता भी तो रुखा और हृदय-विदारक। इस समय विरजन की एक-एक बात, उसकी एक-एक चाल, उसके प्रेम की शिथिलता का परिचय देती हुई प्रतीत होती थी। हाँ, यदि विस्मरण हो गई थी तो विरजन की स्नेहमयी बातें, वे भतवाली आँखें जो वियोग के समय डबडबा गई थीं, और वे कोमल हाथ जिन्होंने उससे विनती की थी कि पत्र बराबर भेजते रहना। यदि ये उसे स्मरण हो आते तो सम्भव था कि उसे कुछ सन्तोष होता। परन्तु ऐसे अवसरों पर मनुष्य की स्मरण-शक्ति धोखा दे दिया करती है।

निदान कमलाचरण ने अपने मनबहलाव का एक ढंग साच ही निकाला। जिस समय से उसे कुछ ज्ञान हुआ, तभी से उसे सौन्दर्य-वाटिका में रमण की करने चाट पीड़ थी सौन्दर्योपासना उसका स्वभाव हो गई थी। यह उसके लिए ऐसी ही अनिवार्य थी, जैसे शरीर रक्षा के लिए भोजन। बोर्डिङ्ग हाउस से मिली हुई एक सेठ की वाटिका थी और उसकी देख-भाल के लिए एक माली नौकर था। उस माली के सरयूदेवी नाम की एक कुंवारी लड़की थी। यद्यपि वह परम सुन्दरी न थी, तथापि कमला सौन्दर्य का इतना इच्छुक न थी, जितना किसी विनोद की सामग्री का। कोई भी स्त्री, जिसके शरीर पर यौवन की झलक हो, उसका मन बहलाने के लिए समुचित थी। कमला इस लड़की पर डोरे डालने लगा। सन्ध्या समय निरन्तर वाटिका की पट

रियों पर टहलता हुआ दिखाई देता । और लड़के तो मैदान में कसरत करते पर कमलाचरण वाटिका में आकर ताक-झाँक किया करता । धीरे-धीरे सरयूदेवी से परिचय हो गया । वह उससे गजरे मोल लेता और चौगुना मूल्य देता । माली को त्योहार के समय सबसे अधिक त्योहारी कमलाचरण ही से मिलती । यहाँ तक कि सरयूदेवी उसके प्रीतिरूपी जाल का आखेट हो गई । और दो-एक बार अन्धकार के पर्दे में परस्पर संयोग भी हो गया ।

एक दिन सन्ध्या का समय था, सब विद्यार्थी सैर को गये हुए थे, कमला केला वाटिका में टहलता था और रह-रहकर माली के झोपड़े की ओर झाँकता था । अचानक झोपड़े में से सरयूदेवी ने उसे संकेत द्वारा बुलाया । कमला बड़ी शीघ्रता से भीतर घुस गया । आज सरयूदेवी ने मलमल की साड़ी पहनी थी जो कमलाबाबू का उपहार थी । शिर में सुगन्धित तेल डाला था जो कमलाबाबू बनारस से लाये थे । और एक छींट का सलूका पहने हुई थी, जो बाबू साहब ने उसके लिए बनवा दिया था । आज वह अपनी दृष्टि में परम सुन्दरी प्रतीत होती थी, नहीं तो कमला जैसा धनी मनुष्य उसपर क्यों प्राण देता ? कमला खटोले पर बैठा हुआ सरयूदेवी के हाव-भाव को मतवाली दृष्टि से देख रहा था । उसे उस समय सरयूदेवी वृजरानी से किसी प्रकार कम सुन्दरी नहीं दीख पड़ती थी । वर्ण में तनिक-सा अन्तर था, पर यह ऐसा कोई बड़ा अन्तर नहीं । उसे सरयूदेवी का प्रेम सच्चा और उत्साह-पूर्ण जान पड़ता था, क्योंकि वह जब कभी बनारस जाने की चर्चा करता तो सरयूदेवी फूट-फूटकर रोने लगती और कहती कि, मुझे भी लेते चलना । मैं तुम्हारा संग न छोड़ूँगी । कहाँ यह प्रेम की तीव्रता व उत्साह का बाहुल्य और कहाँ विरजन की उदासीन सेवा और निर्दयता पूर्ण अभ्यर्थना ?

कमला अभी भली भाँति आँखों को सेंकने भी न पाया था कि अकस्मात् माली ने आकर द्वार खटखटाया । अब काटो तो शरीर में रुधिर नहीं । चेहरे का रंग उड़ गया । सरयूदेवी गिड़-गिड़ाकर बोली:-

“मैं कहाँ जाऊँ ?” सरयूदेवी का ज्ञान आप ही शून्य हो गया था, घबराहट में मुख से शब्द तक न निकला। इतने में माली ने फिर किवाड़ खटखटाया। बेचारी सरयूदेवी विवश थी। उसने डरते डरते किवाड़ खोल दिया। कमलाचरण एक कोने में इवास रोककर खड़ा हो गया।

जिस प्रकार बलिदान का बकरा कटार के तले तड़पता है, उसी प्रकार कोने में खड़े हुए कमला का कलेजा धड़क रहा था। वह अपने जीवन से निराश था और ईश्वर को सच्चे हृदय से स्मरण कर रहा था और कह रहा था कि इस बार इस आपत्ति से मुक्त हो जाऊँगा तो फिर कभी ऐसा काम न करूँगा।

इतने में माली की दृष्टि उसपर पड़ी, पहिले तो घबराया, फिर निकट आकर बोला—“यह कौन खड़ा है ? यह कौन है ?”

इतना सुनता था कि कमलाचरण झपटकर बाहर निकला और फाटक की ओर जी तोड़कर भागा। माली एक डंडा हाथ में लिये “लेना लेना, भागने न पाये !” कहता हुआ पीछे पीछे दौड़ा। यह वही कमला है जो माली को पुरस्कार व पारितोषिक दिया करता था, जिसे माली सरकार और हजूर कहकर बातें करता था। वही कमला आज उसी माली के सम्मुख इस प्रकार जान लेकर भाग जाता है। पाप अग्नि का वह कुण्ड है, जो आदर और मान, साहस और धैर्य को क्षण भर में जलाकर भस्म कर देता है।

कमलाचरण वृक्षों और लताओं की ओट में दौड़ता हुआ, फाटक से बाहर निकला। सड़क पर ट्राम जा रही थी, उसपर जा बैठा और हाँफते-हाँफते अशक्त होकर गाड़ी के पटरे पर गिर पड़ा। यद्यपि माली ने फाटक तक भी पीछा न किया था ; परन्तु कमला प्रत्येक आने-जानेवाले पर चौक चौककर दृष्टि डालता था, मानो सारा संसार उसका शत्रु हो गया है। दुर्भाग्य ने एक और गुल खिलाया। स्टेशन पर पहुँचते ही घबराहट का मारा गाड़ी में जाकर बैठ तो गया, परन्तु उसे टिकट लेने की सुध ही न रही और न उसे यह खबर थी कि मैं

किधर जा रहा हूँ। वह इस समय इस नगर से भागना चाहता था, चाहे कहीं हो। कुछ दूर चला था कि एक अंग्रेज अफसर लालटेन लिये आता दिखाई दिया। उसके संग एक सिपाही भी था। वह यात्रियों का टिकट देखता चला आता था; परन्तु कमला ने जाना कि कोई पुलिस का अफसर है। भय के मारे हाथ-पाँव सनसनाने लगे, कलेजा धड़कने लगा। जब तक अंग्रेज दूसरी गाड़ियों में जाँच करता रहा, तब तक तो वह कलेजा कड़ा किये किसी प्रकार बैठा रहा, परन्तु ज्यों ही उसके कमरे का फाटक खुला कमला के हाथ-पाँव फूल गये। नेत्रों के सामने अँधेरा छा गया, उतावलेपन से दूसरी ओर का किवाड़ खोलकर चलती हुई रेल पर से नीचे कूद पड़ा। [सिपाही और रेलवाले साहब ने उसे इस प्रकार कूदते देखा तो समझा कि कोई अभ्यस्त डाकू है, मारे हर्ष के फूले न समाये कि पारितोषिक अलग मिलेगा और वेतनोन्नति अलग होगी,] फट लाल बत्ती दिखाई। तनिक देर में गाड़ी रुक गई। अब गार्ड, सिपाही और टिकटवाले साहब कुछ अन्य मनुष्यों के सहित गाड़ी से उतर पड़े और लालटेन ले लेकर इधर उधर देखने लगे। किसी ने कहा:—“अब उसकी भूल भी न मिलेगी, पक्का डकैत था।” कोई बोला:—“इन लोगों को कालीजी का ड्रष्ट रहता है, जो कुछ न कर दिखायें थोड़ा है।” परन्तु गार्ड आगे ही बढ़ता गया। वेतन-वृद्धि की आशा उसे आगे ही लिये जाती थी। यहाँ तक कि वह उस स्थान पर जा पहुँचा, जहाँ कमला गाड़ी से कूदा था। इतने में सिपाही ने खड्गे की ओर संकेत करके कहा:—“देखो वह श्वेत रंग की क्या वस्तु है? मुझे तां कोई मनुष्य-सा प्रतीत होता है।” और लोगों ने देखा और विश्वास हो गया कि अवश्य ही दुष्ट डाकू यहाँ छिपा हुआ है, चलकर उसको घेर लो कि कहीं निकलने न पावे, तनिक सावधान रहना। डाकू प्राण पर खेल जाते हैं। गार्ड साहब ने पिस्तौल सँभाली, मियाँ सिपाही ने लाठी तानी। कई यात्रियों ने जूते उतारकर हाथ में लिये कि कहीं आक्रमण कर बैठा तो भागने में सुभीता होगा। दो मनुष्यों ने ढेले उठा लिये कि रही से लक्ष्य

करेंगे। डाकू के निकट कौन जाय, किसे जी भारी है ? परन्तु जब लोगों ने समीप जाकर देखा तो न डाकू था, न था डाकू का भाई ; किन्तु एक सभ्य-स्वरूप, सुन्दर वर्ण, छरहरे शरीर का नवयुवक पृथ्वी पर औंधे मुख पड़ा है। ओर उसके नाक और कान ने धीरे-धीरे रुधिर बह रहा है।

कमला ने इधर साँस तोड़ी और विरज्जन एक भयानक स्वर से देख कर चौंक पड़ी। सरयूदेवी ने विरज्जन का सोहाग लट लिया।

[१९]

दुःख-दशा

सौभाग्यवती स्त्री के लिए उसका पति संसार की सबमे प्यारी वस्तु होती है। वह उसी के लिए जीती है और उसी के लिए मरती है। उसका हँसना-बोलना उसी के प्रसन्न करने के लिए और उसका बनाव-गुंजार उसी को लुभाने के लिए होता है। उसका सोहाग उसका जीवन है, और सोहाग का उठ जाना उसके जीवन का अन्त है।

कमलाचरण की अकाल मृत्यु वृजराजी के लिए मृत्यु से कम न थी। उसके जीवन की आशाएँ और उमंगें सब मिट्टी में मिल गईं क्या-क्या अभिलाषाएँ थी और क्या हो गया ? प्रति-क्षण मृत कमलाचरण का चित्र उसके नेत्रों में भ्रमण करता रहता। यदि थोड़ी देर के लिए उसकी आँखें झपक जातीं तो उसका स्वरूप साक्षात् नेत्रों के सम्मुख आ जाता।

किसी-किसी समय में भौतिक त्रय तमों को किसी विशेष व्यक्ति या कुटुम्ब से प्रेम-सा हो जाता। कमला का शोक शान्त भी न हुआ था कि बाबू श्यामाचरण की बारी आई। शाखा-भेदन से वृक्ष को मुरझाता हुआ न देखकर इस बार दुर्दैव ने मूल ही काट डाला। राम

दीन पाँडे बड़ा दंभी मनुष्य था। जब तक डिप्टी साहब मझगाँव में थे, दबका बैठा रहा; परन्तु ज्यों ही वे नगर को लौटे, उसी दिन से उसने उत्पात करना आरम्भ किया। सारा गाँव का गाँव उसका शत्रु था। जिस दृष्टि से मझगाँववालों ने होली के दिन उसे देखा था, वह दृष्टि उसके हृदय में काँटे की भाँति खटक रही थी। जिस मण्डल में मझगाँव स्थित था, उसके थानेदार साहब एक बड़े घाघ और कुशल रिश्वती थे। सहस्रों की रकम पचा जायँ, पर डकार तक न लें। अभियोग बनाने और प्रमाण गढ़ने में ऐसे अभ्यस्त थे कि वाट चलने मनुष्य को फाँस लें और वह फिर किसी के छुड़ाये न दृटे। अधिकारी वर्ग उनके हथकण्डों से विज्ञ था। पर उनकी चतुराई और कार्यक्षमता के आगे किसी का कुछ बस न चलता था। रामदीन इन थानेदार साहब से मिला और अपने दूतों की औपधि माँगी। इसके एक सप्ताह पश्चात् मझगाँव में डाका पड़ गया। एक महाजन नगर में आ रहा था। रात को नम्बरदार के यहाँ ठहरा। डाकुओं ने उसे लौटकर घर न जाने दिया। प्रातःकाल थानेदार साहब तहकीकात करने आये और एक ही रस्सी में सारे गाँव को बाँधकर ले गये।

दैवात् मुकदमा बाबू श्यामाचरण की इजलास में पेश हुआ। उन्हें पहिले ही से सारा कच्चा चिट्ठा विदित था और ये थानेदार साहब बहुत दिनों से उनकी आँखों पर चढ़े हुए थे। उन्होंने ऐसी बाल की खाल निकाली कि थानेदार साहब की पोल खुल गई। छः मास तक अभियोग चला और धूम से चला। सरकारी वकीलों ने बड़े-बड़े उपाय किये, परन्तु घर के भेदी से क्या छिप सकता था? फल यह हुआ कि डिप्टी साहब ने सब अभियुक्तों को बेदाग छोड़ दिया और उसी दिन सायंकाल को थानेदार साहब मुअत्तल कर दिये गये।

जब डिप्टी साहब फैसला सुनाकर लौटे तो एक हितचिन्तक कर्मचारी ने कहा:—“हुजूर, थानेदार साहब से सावधान रहिएगा। आज बहुत झझाया हुआ था। पहिले भी दोन्तीन अफसरों को धोखा दे चुका है। आप पर अवश्य वार करेगा।” डिप्टी साहब ने सुना और

मुसकुराकर उस मनुष्य को धन्यवाद दिया; परन्तु अपनी रक्षा के लिए कोई विशेष यत्न न किया। उन्हें इसमें अपनी भीरुता जान पड़ती थी। राधा अहीर बड़ा अनुरोध करता रहा कि मैं आपके संग रहूँगा, काशी भर भी बहुत पीछे पड़ा रहा; परन्तु उन्होंने किसी को संग न रखा। पहिले ही की तरह अपना काम करते रहे।

जालिम खाँ बात का धनी था, वह जीवन से हाथ धोकर बाबू श्यामाचरण के पीछे पड़ गया। एक दिन वे सैर करके शिवपुर से कुछ रात गये लौट रहे थे कि पागलखाने के निकट कुछ देखकर फिटिन का घोड़ा बिदका। गाड़ी रुक गई और पल भर में जालिम खाँ ने एक वृक्ष की आड़ से पिस्तौल चलाई। पड़ाके का शब्द हुआ और बाबू श्यामाचरण के वक्षस्थल से गोली पार हो गई। पागलखाने के सिपाही दौड़े। जालिम खाँ पकड़ लिया गया, साईस ने उसे भागने न दिया था।

इस दुर्घटना ने कुटुम्ब का सत्यानाश कर दिया। प्रेमवती यद्यपि बड़ी सुशीला और हँसमुख स्त्री थी; परन्तु इन दुर्घटनाओं ने उसके स्वभाव और व्यवहार में अकस्मान् बड़ा भारी परिवर्तन कर दिया। बात-बात पर विरजन से चिढ़ जाती और कट्टकियों से उसे जलाती। उसे यह भ्रम हो गया था कि ये सब आपत्तियाँ इसी बहू की लाई हुई हैं। यही अभागिनी जबसे घर में आई, घर सत्यानाश हो गया। इसका पौरा बहुत निकृष्ट है। कई बार उसने खोलकर विरजन से कह भी दिया कि—“तुम्हारे चिकने रूप ने मुझे ठग लिया। मैं क्या जानती थी कि तुम्हारे चरण ऐसे अशुभ हैं।” विरजन ये बातें सुनती और कलेजा थामकर रह जाती। जब दिन ही बुरे आ गये तो भली बातें क्योंकर सुनने में आयें। यह आठों पहर का ताप उसे दुःख के आँसू भी न बहाने देते। आँसू तब निकलते हैं, जब कोई हितैषी हो और दुःख को सुने। ताने और व्यंग्य की अग्नि से आँसू जल जाते हैं।

एक दिन विरजन का चित्त बैठे-बैठे घर में ऐसा घबराया कि वह तनिक देर के लिए वाटिका में चली आई। आह! इस वाटिका में कैसे कैसे आनन्द के दिन बीते थे। इसका एक-एक पौधा मरनेवाले के

असीम प्रेम का स्मारक था। कभी वे दिन भी थे कि इन फूलों और पत्तियों को देखकर चित्त प्रफुल्लित होता था। और सुरभित वायु चित्त को प्रमुदित कर देती थी। यही वह स्थल है, जहाँ अनेक सन्ध्याएँ प्रेमालाप में व्यतीत हुई थीं। उस समय पुष्पों की कलियाँ अपने कोमल अधरों से उसका स्वागत करती थीं। पर शोक ! आज उनके मस्तक झुके हुए और अधर बन्द थे ! क्या यह वह स्थान न था जहाँ “अलबेली मालिन” फूलों के हार गँथती थी ? पर भोली मालिन को क्या मालूम था कि इसी स्थान पर उसे अपने नेत्रों से निकले हुए मोतियों के हार गँथने पड़ेंगे ! इन्हीं विचारों में विरजन की दृष्टि उस कुञ्ज की ओर उठ गई जहाँ से एक बार कमलाचरण मुसकुराता हुआ निकला था, मानो वह पत्तियों का हिलना और उसके वस्त्रों की झलक देख रही है। उसके मुख पर उस समय मन्द-मन्द मुसकान-सी प्रकट होती थी, जैसे गंगा में डूबते हुए सूर्य की पीली और मलिन किरणों का प्रतिबिम्ब पड़ता है। अचानक प्रेमवती ने आकर कर्णकटु शब्दों में कहा:—“अब आपको सैर करने का शौक हुआ है !”

विरजन खड़ी हो गई और रोती हुई बोली:—“माता ! जिसे नारायण ने कुचला, उसे आप क्या कुचलती हैं !”

निदान प्रेमवती का चित्त वहाँ से ऐसा उचाट हुआ कि एक मास के भीतर सब सामान औने-पौने बेचकर मझगाँव चली गई। वृजरानी को संग न लिया। उसका मुख देखने से उसे घृणा हो गई थी। विरजन इस विस्तृत भवन में अकेली रह गई। माधवी के अतिरिक्त अब उसका कोई हितैषी न रहा। सुवामा की अपना मुँह-बोली बेटी की विपत्तियों का ऐसा ही शोक हुआ, जितना अपनी बेटी का होता। कई दिन तक रोती रही और कई दिन बराबर उसे समझाने के लिए आती रही। जब विरजन अकेली रह गई तो सुवामा ने चाहा कि यह मेरे यहाँ उठ आये, और सुख से रहे। स्वयं कई बार बुलाने गई, पर विरजन किसी प्रकार जाने को राजी न हुई। वह सोचती थी कि ससुर को संसार से सिधारे अभी तीन मास भी नहीं हुए, इतनी जल्दी

यह घर सूना हो जायगा तो लोग कहेंगे कि उनके मरने ही सास और बहू लड़ मरीं। यहाँ तक कि उसके इस हठ से सुवामा का मन मोटा हो गया।

मझगाँव में प्रेमवती ने एक अन्धेर मचा रखा था। असामियों को कटु वचन कहती। कारिन्दा के शिर पर जूती पटक दी। पटवारी को कोसा। राधा अहीर की गाय बलात्कार छीन ली। यहाँ तक कि गाँव-वाले घबरा गये। उन्होंने बाबू राधाचरण से शिकायत की। राधाचरण ने यह समाचार सुना तो विश्वास हाँ गया कि अवश्य इन दुर्घटनाओं ने अम्मा की बुद्धि भ्रष्ट कर दी है। इस समय किसी प्रकार इनका मन बहलाना चाहिए। सेवती को लिखा कि तुम माताजी के पास चली जाओ और उनके संग कुछ दिन रहो। सेवती की गोद में उन दिनों एक चाँद-सा बालक खेल रहा था। और प्राणनाथ दो मास की छुट्टी लेकर दरभंगा से घर आये थे। राजा साहब के प्राइवेट सेक्रेटरी हो गये थे। ऐसे अवसर पर सेवती कैसे आ सकती थी? तैयारियाँ करते करते महीनों गुजर गये। कभी बच्चा बीमार पड़ गया, कभी सास रुष्ट हो गई; कभी साइत न बनी। निदान छठे महीने उसे अवकाश मिला। वह भी बड़ी विनितियों से।

परन्तु प्रेमवती पर उसके आने का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। वह उसके गले मिलकर रोई भी नहीं। उसके बच्चे की ओर आँख उठाकर भी न देखा। उसके हृदय में अब ममता और प्रेम नाम मात्र को भी न रह गया था। जैसे ईख से रस निकाल लेने पर केवल सीठी रह जाती है, उसी प्रकार जिस मनुष्य के हृदय से प्रेम निकल गया वह अस्थि चर्म का एक ढेर रह जाता है। देवी, देवता का नाम मुख पर आते ही उसके तेवर बदल जाते थे। मझगाँव में जन्माष्टमी हुई। लोगों ने ठाकुर जी का व्रत रखा और चन्दा से नाच कराने की तैयारियाँ करने लगे। परन्तु प्रेमवती ने ठीक जन्म के अवसर पर अपने घर की मूर्ति खेत में फिकवा दी। एकादशी व्रत छूटा, देवताओं की पूजा छूटी। वह प्रेमवती अब प्रेमवती ही नहीं थी।

सेवती ने ज्यों त्यों करके यहाँ दो महीने काटे। उसका चित्त बहुत घबराता। कोई सखी-सहेली भी न थी, जिसके सङ्ग बैठकर दिन काटती। विरजन ने तुलसा को अपनी सखी बना लिया था। परन्तु सेवती का स्वभाव सरल न था। ऐसी स्त्रियों से मेलजोल करने में वह अपनी मान-हानि समझती थी। तुलसा बेचारी कई बार आई; परन्तु जब देखा कि यह मन खोलकर नहीं मिलती तो आना-जाना छोड़ दिया।

तीन मास व्यतीत हो चुके थे। एक दिन सेवती दिन चढ़े तक सोती रही। प्राणनाथ ने रात को बहुत रुलाया था। जब नींद उचटी तो क्या देखती है कि प्रेमवती उसके वचनों को गोद में लिये चूम रही है। कभी आँखों से लगाती है, कभी छाती से चिमटाती है। सामने अँगूठी पर हलुआ पक रहा है। वच्चा उसकी ओर अँगुली से संकेत कर करके उछलता है कि कटोरे में जा बैठूँ और गरम गरम हलुवा चखूँ। आज उसका मुखमण्डल कमल की भाँति खिला हुआ है। स्यात् उसकी तीव्र दृष्टि ने यह जान लिया है कि प्रेमवती के शुष्क हृदय में प्रेम ने आज फिर से निवास किया है। सेवती को विश्वास न हुआ। वह चारपाई पर पड़े मुकुलित लोचनों से ताक रही थी, मानों स्वप्न देख रही है। इतने में प्रेमवती प्यार से बोली—उठो बेटा ! उठो ! दिन बहुत चढ़ा आया है।

सेवती के रोंगटे खड़े हो गये और आँखें भर आईं। आज बहुत दिनों के पश्चात् माता के मुख से प्रेममय वचन सुने। झट उठ बैठी और माता के गले लिपटकर रोने लगी। प्रेमवती की आँखों से भी आँसू की झड़ी लग गई, सूखा वृक्ष हरा हुआ। जब दोनों के आँसू थमे तो प्रेमवती बोली—सित्तो ! तुम्हें आज यह सब बातें अचरज प्रतीत होती हैं, हाँ बेटा अचरज ही हैं। मैं कैसे रोऊँ जब आँखों में आँसू ही न रहे ? प्यार कहाँ से लाऊँ, जब कलेजा सूखकर पत्थर हो गया ? ये सब दिनों के फेर हैं। आँसू उनके साथ गये और प्यार कमला के साथ। आज न जाने ये दो वूँद कहाँ से निकल आये ? बेटा ! मेरे अपराध सब क्षमा करना।

कह कहते कहते उसकी आँखें झपकने लगीं। सेवती घबरा गई। माता को धिस्तर पर लेटा दिया और पंखा झलने लगी। उस दिन मे प्रेमवती की यह दशा हो गई कि जब देखो, रो रही है। वच्चे को एक क्षण के लिए भी पास से दूर नहीं करती। महारियों से बोलती तो मुख में फूल झड़ते। फिर वही पहिले की सुशीला प्रेमवती हो गई। ऐसा प्रतीत होता था, मानों उसके हृदय पर से एक पर्दा-सा उठ गया है। जब कड़ाके का जाड़ा पड़ता है, तो प्रायः नदियाँ बर्फ में ढक जाती हैं, उसमें बसनेवाले जलचर बर्फ के पर्दे में छिप जाते हैं, नौकाएँ फँस जाती हैं और उस मंदगति, रजतवर्ण, प्राण-संजीवन, जल-स्रोत का स्वरूप कुछ भी दिखाई नहीं देता है। यद्यपि बर्फ की चढ़र की ओट में वह मधुर निद्रा में अलसित पड़ा रहता है; तथापि जब गरमी का साम्राज्य होता है, तो बर्फ पिघल जाता है और रजतवर्णा नदी अपनी बर्फ की चढ़र उठा लेती है; फिर मछलियाँ और जलजन्तु आ बसते हैं, नौकाओं के पाल लहराने लगते हैं और तट पर मनुष्यों और पक्षियों का जमघट हो जाता है।

परन्तु प्रेमवती की यह दशा बहुत दिनों तक स्थिर न रही। यह चैतन्यता मानों मृत्यु का सन्देश थी। इसी चित्तोद्विग्नता ने उसे अब तक जीवन-कारावास में रखा था, अन्यथा प्रेमवती जैसी कोमल-हृदय स्त्री आपत्तियों के ऐसे झोंके कदापि न सह सकती।

सेवती ने चारों ओर तार दिलवाये कि आकर माताजी को देख जाओ। पर कहीं से कोई न आया। प्राणनाथ को छुट्टी न मिली, विरजन बीमार थी, रहे राधाचरण, वे नैनीताल वायु-परिवर्तन करने गये हुए थे। प्रेमवती को पुत्र ही देखने की लालसा थी, पर जब उनका पत्र आ गया कि इस समय मैं नहीं आ सकता, तो उसने एक लम्बी साँस लेकर, आँखें मूँद लीं; और वह ऐसी सोई कि फिर उठना नसीब न हुआ।

[२०]

मन का प्रायत्न

मानवहृदय एक रहस्यमय वस्तु है। कभी तो वह लाखों की ओर आँख उठाकर नहीं देखता, और कभी कौड़ियों पर फिसल पड़ता है। कभी सैकड़ों निर्दोषों की हत्या पर 'आह' तक नहीं करता, और कभी एक बच्चे को देखकर रो देता है। प्रतापचन्द्र और कमलाचरण में यद्यपि सहोदर भाइयों का प्रेम था, तथापि कमला की आकस्मिक मृत्यु का जो शोक होना चाहिए, वह न हुआ। सुनकर वह चौंक अवश्य पड़ा और थोड़ी देर के लिए उदास भी हुआ; पर वह शोक जो किसी सच्चे मित्र की मृत्यु से होता है, उसे न हुआ। निस्सन्देह वह विवाह के पूर्व ही से विरजन को अपनी बहिन समझता था, तथापि इस विचार में उसे पूर्ण सफलता कभी प्राप्त न हुई। समय समय पर उसका विचार इस पवित्र सम्बन्ध की सीमा का उल्लंघन कर जाता था। कमलाचरण से उसे स्वतः कोई प्रेम न था। उसका जो कुछ आदर, मान और प्रेम वह करता था; कुछ तो इस विचार से कि विरजन सुनकर प्रसन्न होगी और कुछ इस विचार से कि सुशीला की मृत्यु का प्रायश्चित्त इसी प्रकार हो सकता है। जब विरजन ससुराल चली आई, तो अवश्य कुछ दिनों प्रताप ने उसे अपने ध्यान में न आने दिया; परन्तु जबसे वह उसकी बीमारी का समाचार पाकर बनारस गया था और उसकी भेंट ने विरजन पर संजीवनी बूटी का काम किया था, उसी दिन से प्रताप को विश्वास हो गया था कि विरजन के हृदय में कमला ने वह स्थान नहीं पाया जो मेरे लिए नियत था।

प्रताप ने विरजन को परम करुणापूर्ण शोक-पत्र लिखा। पर पत्र लिखता जाता था और सोचता जाता था कि इसका उसपर क्या प्रभाव होगा? सामान्यतः समवेदना प्रेम को प्रौढ़ करती है। क्या आश्चर्य है जो यह पत्र कुछ काम कर जाय। इसके अतिरिक्त उसकी धार्मिक प्रवृत्ति ने विकृत रूप धारण करके उसके मन में यह मिथ्या

विचार उत्पन्न किया कि ईश्वर ने मेरे प्रेम की प्रतिष्ठा की और कमलाचरण को मेरे मार्ग से हटा दिया, मानो यह आकाश से आदेश मिला है कि अब मैं विरजन से अपने प्रेम का पुरस्कार लूँ। प्रताप यह तो जानता था कि विरजन से किसी ऐसी बात की आशा करना जो सदाचार और सत्यता से बाल बराबर भी हटी हुई हां, मूर्खता है; परन्तु उसे विश्वास था कि सदाचार और सतीत्व के सीमान्तर्गत यदि मेरी कामनाएँ पूरी हो सकें, तो विरजन अधिक समय तक मेरे साथ निर्दयता नहीं कर सकती।

एक मास तक ये विचार उसे उद्विग्न करते रहे। यहाँ तक कि उसके मन में विरजन से एक बार गुप्त भेट करने की प्रबल इच्छा भी उत्पन्न हुई। वह यह जानता था कि अभी विरजन के हृदय पर तत्कालीन घाव है, और यदि मेरी किसी बात या किसी व्यवहार से मेरे मन की दुश्चेष्टा की गन्ध निकली, तो मैं विरजन की दृष्टि से हमेशा के लिए गिर जाऊँगा। परन्तु जिस प्रकार कोई चोर रुपयों की राशि देखकर धैर्य नहीं रख सकता है, उसी प्रकार प्रताप अपने मन को रोक न सका। मनुष्य का प्रारब्ध बहुत कुछ अवसर के हाथ में रहता है। अवसर उसे भला भी मानता है और बुरा भी। जब तक कमलाचरण जीवित था, प्रताप के मन को कभी इतना शिर उठाने का साहस न हुआ था। उसकी मृत्यु ने मानों उसे यह अवसर दे दिया। यह स्वार्थपरता का मद यहाँ तक बढ़ा कि एक दिन उसे ऐसा भास होने लगा, मानों विरजन मुझे स्मरण कर रही है। अपनी व्यग्रता से वह विरजन की व्यग्रता का अनुमान करने लगा। बनारस जाने का इरादा पक्का हो गया।

दो बजे रात्रि का समय था, भयावह सन्नाटा छाया हुआ था। निद्रा ने सारे नगर पर एक घटाटोप चादर फैला रखी थी। कभी-कभी वृक्षों की सनसनाहट सुनाई दे जाती थी। धुआँ घरों और वृक्षों पर एक काली चदर की भाँति लिपटा हुआ था, और सड़क पर लालटेनें धुएँ की कालिमा में ऐसी दृष्टिगत होती थीं जैसे बादल में छिपे हुए

तारे। प्रतापचन्द्र रेलगाड़ी पर से उतरा। उसका कलेजा बाँसों उल्लू रहा था और हाथ-पाँव काँप रहे थे। वह जीवन में पहिला ही अवसर था, कि उसे पाप का अनुभव हुआ। शोक है कि हृदय की यह दशा अधिक समय तक स्थिर नहीं रहती। वह इस दुर्गम मार्ग को पूरा कर लेती है। जिस मनुष्य ने कभी मदिरा नहीं पी, उसे उसकी दुर्गन्ध से घृणा होती है। जब प्रथम बार पीता है तो घण्टों उसका मुख कड़वा रहता है और वह आश्चर्य करता है कि क्यों लोग ऐसी विपैली और कड़वी वस्तु पर आसक्त हैं। पर थोड़े ही दिनों में उसकी घृणा दूर हो जाती है और वह भी लाल रस का दास बन जाता है। पाप का स्वाद मदिरा से कहीं अधिक भयङ्कर होता है।

प्रतापचन्द्र अँधेरे में धीरे-धीरे जा रहा था। उसके पाँव वेग से नहीं उठते थे, क्योंकि पाप ने उनमें बेड़ियाँ डाल दी थीं। उस आल्हाद का जो ऐसे अवसर पर गति को तीव्र कर देता है, उसके मुख पर कोई लक्षण न था। वह चलते-चलते रुक जाता और फिर कुछ सोचकर आगे बढ़ता था। प्रेत उसे पाप के खड्डे में कैसा खींचे लिये जाता है ?

प्रताप का शिर धम-धम कर रहा था और भय से उसकी पिंडलियाँ काँप रही थीं। सोचता विचारता, घण्टे भर में मुंशी श्यामाचरण के विशाल भवन के सामने जा पहुँचा। आज अन्धकार में यह भवन बहुत ही भयावह प्रतीत होता था, मानों पाप का पिशाच सामने खड़ा है। प्रताप दीवार की ओट में खड़ा हो गया, मानो किसी ने उसके पाँव बाँध दिये हैं। आध घण्टे तक वह यही सोचता रहा कि लौट चलों या भीतर जाऊँ ? यदि किसी ने देख लिया तो बड़ा ही अनर्थ होगा। विरजन मुझे देखकर मन में क्या सोचेगी ? कहीं ऐसा न हो कि मेरा यह व्यवहार मुझे सदा के लिए उसकी दृष्टि से गिरा दे। परन्तु इन सब सन्देहों पर पिशाच का आकर्षण प्रबल हुआ। इन्द्रियों के वश में होकर मनुष्य को भले-बुरे का ध्यान नहीं रह जाता। उसने चित्त को दृढ़ किया। वह इस कायरता पर अपने को धिक्कार देने लगा, तदनन्तर घर के पीछे की ओर जाकर वाटिका की चहार-दीवारी से फाँद गया।

वाटिका से घर में जाने के लिए एक छोटा-सा द्वार था। दैवयोग से वह इस समय खुला हुआ था। प्रताप को यह शकुन-सा प्रतीत हुआ। परन्तु वस्तुतः यह अधर्म का द्वार था। भीतर जाते हुए प्रताप के पाँव थराने लगे। हृदय इस वेग से धड़कता था, मानों वह छाती से बाहर निकल पड़ेगा। उसका दम घुट रहा था। धर्म ने अपना सारा बल लगा दिया। पर मन का प्रबल वेग न रुक सका। प्रताप द्वार के भीतर प्रविष्ट हुआ और आँगन में तुलसी के चबूतरे के पास चोरों की भाँति खड़ा सोचने लगा कि विरजन से क्योंकि भेट होगी। घर के सब किवाड़ बन्द हैं, क्या विरजन भी यहाँ से चली गई? अचानक उसे एक बन्द दरवाजे के दरारों से रोशनी के प्रकाश की झलक दिखाई दी। दूरे पाँव उसी ओर चला और दरार में आँख लगाकर भीतर का दृश्य देखने लगा।

विरजन एक सफेद साड़ी पहिने, बाल खोले, हाथ में लेखनी लिये भूमि पर बैठी थी। और दीवार की ओर देख-देखकर कागज़ पर कुछ लिखती जाती थी। मानों कोई कवि विचार के समुद्र से माती निकाल रहा है। लेखनी को दाँतों तले दबाती, कुछ सोचती और लिखती, फिर थोड़ी देर के पश्चात् दीवार की ओर ताकने लगती। प्रताप बहुत देर तक आस रोके हुए यह विचित्र दृश्य देखता रहा। मन उसे बार-बार ठोकर देता, पर यह धर्म का अन्तिम गढ़ था। इस बार धर्म का पराजित होना मानों हृद्धाम में पिशाच का स्थान पाना था। धर्म ने इस समय प्रताप को उस खड्डे में गिरने से बचा लिया, जहाँ से आमरण उसे निकलने का सौभाग्य न होता, वरन् यह कहना उचित होगा कि पाप के खड्डे से बचानेवाला इस समय धर्म न था, वरन् दुष्परिणाम का और लज्जा का भय था। किसी-किसी समय जब हमारे सद्भाव पराजित हो जाते हैं, तब दुष्परिणाम का भय ही हमें कर्तव्य-च्युत होने से बचा लेता है। विरजन के पीले बदन पर एक ऐसा तेज था, जो उसके हृदय की स्वच्छता और विचार की उच्चता का परिचय दे रहा था। उसके मुख-मण्डल की उज्ज्वलता और दृष्टि की पवित्रता में वह अग्नि थी, जिसने

प्रताप की दुश्चेष्टाओं को क्षणमात्र में भस्म कर दिया। उसे ज्ञान हो गया और अपने आत्मिक पतन पर ऐसी लज्जा उत्पन्न हुई कि वहीं खड़ा रोने लगा।

इन्द्रियों ने जितने निकृष्ट विकार उसके हृदय में उत्पन्न कर दिये थे, वे सब इस दृश्य ने इस प्रकार लोप कर दिये जैसे उजाला अँधेरे को दूर कर देता है। इस समय उसे यह इच्छा हुई कि विरजन के चरणों पर गिरकर अपने अपराधों की क्षमा माँगे। जैसे किसी महात्मा संन्यासी के सम्मुख जाकर हमारे चित्त की दशा हो जाती है, उसी प्रकार प्रताप के हृदय में स्वतः प्रायश्चित्त के विचार उत्पन्न हुए। पिशाच यहाँ तक लाया, पर आगे न ले जा सका। वह उलटे पाँवों फिरा और ऐसी तीव्रता से वाटिका में आया और चहारदीवारी से बाहर कूदा, मानों कोई उसका पीछा करता है।

अरुणोदय का समय हो गया था, आकाश में तारे झलमला रहे थे, और चक्री का घुर-घुर शब्द कर्ण-गोचर हो रहा था। प्रताप पाँव दवाता, मनुष्यों की आँखें बचाता गंगाजी की ओर चला। अचानक उसने शिर पर हाथ रखा तो टोपी का पता न था, और न जेब में घड़ी ही दिखाई दी। उसका कलेजा सन्न से हाँ गया। मुँह से एक हृदय वेधक आह निकल पड़ी।

कभी-कभी जीवन में ऐसी घटनाएँ हो जाती हैं, जो क्षणमात्र में मनुष्य का रूप पलट देती हैं। कभी माता-पिता की एक तिर्छी चितवन पुत्र को सुयश के उच्च शिखर पर पहुँचा देती है और कभी स्त्री की एक शिक्षा पति के ज्ञान-चक्षुओं को खोल देती है। गर्वशील पुरुष अपने सगों की दृष्टियों में अपमानित होकर संसार का भार बनना नहीं चाहते। मनुष्य-जीवन में ऐसे अवसर ईश्वरप्रदत्त होते हैं। प्रतापचन्द्र के जीवन में भी वह शुभ अवसर था, जब वह संकीर्ण गलियों में होता हुआ गंगा के किनारे आकर बैठा और शोक तथा लज्जा के अश्रु प्रवाहित करने लगा। मनोविकार की प्रेरणाओं ने उसकी अधोगति में कोई कसर उठा न रखी थी। परन्तु उसके लिए यह कठोर कृपालु गुरु की

ताड़ना प्रमाणित हुई। क्या यह अनुभवसिद्ध नहीं है कि विष भी समयानुसार अमृत का काम करता है ?

जिस प्रकार वायु का झोंका सुलगती हुई अग्नि को दहका देता है, उसी प्रकार बहुधा हृदय में दबे हुए उत्साह को भड़कने के लिए किसी बाह्य उपयोग की आवश्यकता होती है। अपने दुःखों का अनुभव और दूसरों की आपत्ति का दृश्य बहुधा वह वैराग्य उत्पन्न करता है, जो सत्सङ्ग, अध्ययन और मन की प्रवृत्ति से भी सम्भव नहीं। यद्यपि प्रतापचन्द्र के मन में उत्तम और निःस्वार्थ जीवन व्यतीत करने का विचार पूर्व ही सं था, परन्तु मनोविकार के इस धक्के ने वह काम एक ही क्षण में पूरा कर दिया, जिसके पूरा होने में वर्षों लगते। साधारण दशाओं में जाति सेवा उसके जीवन का एक गौण कार्य होती, परन्तु इस चेतावनी ने सेवा को उसके जीवन का प्रधान उद्देश्य बना दिया, सुवामा की हार्दिक अभिलाषा पूर्ण होने के सामान पैदा हो गये। क्या इन घटनाओं के अन्तर्गत कोई अज्ञात प्रेरक शक्ति थी ? कौन कह सकता है ?

[२१]

विदुषी वृजरानी

जबसे मुंशी सञ्जीवनलाल तीर्थयात्रा को निकले और प्रतापचन्द्र प्रयाग चला गया उस समय से सुवामा के जीवन में बड़ा अन्तर हो गया था। वह ठेके के कार्य को उन्नत करने लगी। मुंशी संजीवनलाल के समय में भी, व्यापार में इतनी उन्नति न हुई थी। सुवामा रात रात भर बैठी ईंट-पत्थरों से माथा लड़ाया करती और गारे-चूने की चिन्ता में व्याकुल रहती। पाई पाई का हिसाब समझती और कभी-कभी स्वयं कुलियों के कार्य की देखभाल करती। इन कार्यों में उसकी ऐसी प्रवृत्ति हुई कि दान से और व्रत से भी वह पहले का सा प्रेम न रहा। प्रतिदिन आय-वृद्धि होने पर भी सुवामा ने व्यय किसी प्रकार का न

बढ़ाया। कौड़ी कौड़ी दातों से पकड़ती और यह सब इसलिए कि प्रतापचन्द्र धनवान् हो जाय और अपने जीवनपर्यन्त सानन्द रहे।

सुवामा को अपने हानहार पुत्र पर अभिमान था। उसके जीवन की गति देखकर उसे विश्वास हो गया था कि मन में जो अभिलाषा रखकर मैंने पुत्र माँगा था, वह अवश्य पूर्ण होगी। वह कॉलिज के प्रिन्सिपल और प्रॉफेसरों से प्रताप का समाचार गुप्त रीति से लिया करती थी। और उनकी सूचनाओं का अध्ययन उसके लिए एक रोचक कहानी के तुल्य था। ऐसी दशा में प्रयाग से प्रतापचन्द्र के लोप हो जाने का तार पहुँचना मानों उसके हृदय पर वज्र का गिरना था। सुवामा एक ठंडी साँस ले मस्तक पर हाथ रख बैठ गई। तीसरे दिन प्रतापचन्द्र की पुस्तक, कपड़े और अन्य सामग्रियाँ भी आ पहुँची। यह घाव पर नमक का छिड़काव था।

प्रेमवती के मरने का समाचार पाते ही प्राणनाथ पटना से और राधाचरण नैनीताल से चले। उसके जीते जी आते तो भेट हो जाती, मरने पर आये तो उसके शव को भी देखने का सौभाग्य न हुआ। मृतकसंस्कार बड़ी धूम से किया गया। दो सप्ताह गाँव में बड़ी धूम-धाम रही। तत्पश्चात् राधाचरण मुरादाबाद चले गये और प्राणनाथ ने पटना जाने की तैयारी प्रारम्भ कर दी। उनकी इच्छा थी कि स्त्री को प्रयाग पहुँचाते हुए पटना जायँ। पर सेवती ने हठ किया कि जब यहाँ तक आये है तो विरजन के पास भी अवश्य चलना चाहिए। नहीं तो उसे बड़ा दुःख होगा। समझेगी कि मुझे असहाय जानकर इन लोगों ने भी त्याग दिया।

सेवती का इस उचाट भवन में आना मानो पुष्पों में सुगन्ध का आना था। सप्ताह भर के लिए सुदिन का शुभागमन हो गया। विरजन बहुत प्रसन्न हुई और खूब रोई। माधवी ने मुन्नू को अङ्क में लेकर बहुत प्यार किया। बाहर की बैठक कई मास से बन्द थी, आज उसके भी भाग्य जागे। उजड़ा हुआ घर बसा।

प्रेमवती के चले जाने पर विरजन उस गृह में अकेली रह गई थी।

केवल माधवी उसके साथ थी। हृदय-ताप और मानसिक दुःख ने उसका वह गुण प्रकट कर दिया, जो अब तक गुप्त था। वह काव्य और पद्यरचना का अभ्यास करने लगी। कविता सच्ची भावनाओं का चित्र है, और सच्ची भावनाएँ चाहे वे दुःख की हों या सुख की, उसी समय उत्पन्न होती हैं जब हम दुःख या सुख का अनुभव करते हैं। विरजन इन दिनों रात रात बेठी भाषा में अपने मनोभावों के मोतियों की माला गुँथा करती। उसका एक-एक शब्द करुणा और वैराग्य से परिपूर्ण होता था। अन्य कवियों के मनों में मित्रों की वाह-वाह और काव्य-प्रेमियों के साधुवाद से उत्साह पैदा होता है। पर विरजन अपनी दुःख-कथा अपने ही मन को सुनाती थी।

सेवती के आये दो-तीन दिन बीते थे। एक दिन उसने विरजन से कहा:—मैं तुम्हें बहुधा किसी ध्यान में मग्न देखती हूँ, और कुछ लिखते भी पाती हूँ। मुझे न बताओगी? विरजन लज्जित हो गई। वहाना करने लगी कि कुछ नहीं, यों ही जी कुछ उदास रहता है। सेवती ने कहा:—मैं न मानूँगी। फिर वह विरजन का वाँक्स उठा आई, जिसमें कविता के दिव्य मोती रखे हुए थे। विवश होकर विरजन ने अपने नये पद्य सुनाने शुरू किये। मुख से प्रथम पद का निकलना था कि सेवती के रोए खड़े हो गये और जब तक सारा पद्य समाप्त न हुआ वह तन्मय होकर सुनती रही। प्राणनाथ की रंगति ने उने काव्य का रसिक बना दिया था। बार बार उसके नेत्र भर आते। जब विरजन चुप हो गई तो एक समा बँधा हुआ था, मानों कोई मनोदर राग अभी ही थम गया है। सेवती ने विरजन को कण्ठ से लिपटा लिया, फिर उने छोड़कर दौड़ी हुई प्राणनाथ के पास गई। जेने कोई बच्चा नया खिलौना पाकर हर्ष से दौड़ता हुआ अपने साथियों को दिखाने जाता है। प्राणनाथ अपने अप्सर को प्रार्थनापत्र लिख रहे थे कि मेरी माता अति पीड़ित हो गई है, अतएव सेवा में प्रस्तुत होने में विलम्ब हुआ। आशा करता हूँ कि एक सप्ताह का आकस्मिक अवकाश प्रदान किया जायगा। सेवती को देखकर चट

अपना प्रार्थनापत्र छिपा लिया और मुस्कुराये। मनुष्य कैसा धूर्त है ! वह अपने आपको भी धोखा देने से नहीं चूकता।

सेवती—तनिक भीतर चलो, तुम्हें विरजन की कविता सुनवाऊँ, फड़क उठोगे।

प्राण०—अच्छा, अब उन्हें कविता की चाट हुई है ? उनकी भाभी भी तो गाया करती थीं—तुम तो श्याम बड़े बेखबर हो।

सेवती—तनिक चलकर सुनो तो पीछे हँसना। मुझे तो उसकी कविता पर आश्चर्य हो रहा है।

प्राण०—चलो, एक पत्र लिखकर अभी आता हूँ।

सेवती—अब यही मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं आके पत्र नोच डालूँगी।

सेवती प्राणनाथ को घसीटे ले आई। वे अभी तक यही जानते थे कि विरजन ने कोई सामान्य भजन बनाया होगा। उसी को सुनाने के लिए व्याकुल हो रही होगी। पर जब भीतर आकर बैठे, और विरजन ने लजाते हुए अपनी भावपूर्ण कविता 'प्रेम की मतवाली' पढ़नी आरम्भ की तो महाशय के नेत्र खुल गये। पद्य क्या था, हृदय के दुःख की एक धारा और प्रेम रहस्य की एक कथा थी। वह सुनते थे और मुग्ध होकर झूमते थे। शब्दों की एक-एक योजना पर, भावों के एक-एक उद्गार पर लहालोट हुए जाते थे। उन्होंने बहुतेरे कवियों के काव्य देखे थे, पर यह उच्च विचार, यह नूतनता, यह भावोत्कर्ष कहीं दीख न पड़ा था। वह समय चित्रित हो रहा जब अरुणोदय के पूर्व मलयानिल लहराता हुआ चलता है, कलियाँ विकसित होती हैं, फूल महकते हैं और आकाश पर हलकी लालिमा छा जाती है। एक-एक शब्द में नवविकसित पुष्पों की शोभा और हिमकणों की शीतलता विद्यमान थी। उसपर विरजन का सुरीलापन, और ध्वनि की मधुरता सोने में सुगन्ध थी। ये वे छन्द थे, जिनपर विरजन ने हृदय की दीपक की भाँति जलाया था। प्राणनाथ प्रहसन के उद्देश्य से आये थे। पर जब वे उठे हैं तो वस्तुतः ऐसा प्रतीत होता था,

मानों छाती से हृदय निकल गया है। एक दिन उन्होंने विरजन से कहा—‘यदि तुम्हारी कविताएँ छपें तो उनका बहुत आदर हो।’ विरजन ने सिर नीचा करके कहा—‘मुझे विश्वास नहीं कि कोई इनको पसन्द करे।’

प्राणनाथ—ऐसा संभव ही नहीं, यदि हृदयों में कुछ भी रसिकता है तो तुम्हारे काव्य की अवश्य प्रतिष्ठा होगी। यदि ऐसे लोग विद्यमान हैं जो पुष्पों की सुगन्ध से आनन्दित हो जाते हैं; जो पक्षियों के कल-रव और चाँदनी की मनोहारिणी छटा का आनन्द उठा सकते हैं, तो वे तुम्हारी कविता को अवश्य हृदय में स्थान देंगे। विरजन के हृदय में वह गुदगुदी उत्पन्न हुई जो प्रत्येक कवि को अपने काव्यचिन्तन की प्रशंसा मिलने पर और कविता के मुद्रित होने के विचार से होती है। यद्यपि वह नहीं नहीं करती रही, पर वह ‘नहीं’ ‘हाँ’ के समान थी। प्रयाग से उन दिनों ‘कमला’ नाम की अच्छी पत्रिका निकलती थी। प्राणनाथ ने ‘प्रेम की मतवाली’ को वहाँ भेज दिया। सम्पादक एक काव्यरसिक महानुभाव थे। कविता पर हार्दिक धन्यवाद दिया और जब यह कविता प्रकाशित हुई तो साहित्य-संसार में धूम मच गई। कदाचित् ही किसी कवि को प्रथम ही बार ऐसी ख्याति मिली हो। लोग पढ़ते और विस्मय से एक दूसरे का मुँह ताकते थे। काव्य-प्रेमियों में कई सप्ताह तक मतवाली वाला के चर्चे रहे। किसी को विश्वास ही न आता था कि यह एक नवजात कवि की रचना है।

अब प्रतिमास कमला के पृष्ठ विरजन की कविता से सुशोभित होने लगे। और ‘भारत-महिला’ को लोकमत ने, कवियों के सम्मानित पद पर पहुँचा दिया। ‘भारत-महिला’ का नाम बच्चे-बच्चे की जिह्वा पर चढ़ गया। कोई समाचारपत्र या पत्रिका ऐसी न थी जो ‘भारत-महिला’ की रचनाओं की इच्छुक न हो। पत्र खोलते ही पाठकों के नेत्र ‘भारत-महिला’ को ढूँढने लगते। हाँ, उसकी दिव्य शक्तियाँ अब किसी को विस्मय में न डालतीं। उसने स्वयं कविता का आदर्श उच्च कर दिया था।

तीन वर्ष तक किसी को कुछ भी पता न लगा कि 'भारत-महिला' कौन है? निदान प्राणनाथ से न रहा गया। उन्हें विरजन पर भक्ति हो गई थी। वे कई मास से उसका जीवन चरित्र लिखने की धुन में थे। सेवती के द्वारा धीरे-धीरे उन्होंने उसका सब जीवन-चरित्र ज्ञात कर लिया और 'भारत-महिला' के शीर्षक से एक प्रभाव-पूरित लेख लिखा। प्राणनाथ ने पहिले कभी कोई लेख न लिखा था, परन्तु श्रद्धा ने अभ्यास की कमी पूरी कर दी थी। लेख अत्यन्त रोचक, समालोचनात्मक और भावपूर्ण था।

इस लेख का मुद्रित होना था कि विरजन को चारों तरफ से प्रतिष्ठा के उपहार मिलने लगे। राधाचरण मुरादाबाद से उसकी भेंट को आये। कमला, उमादेवी, सीता, चन्द्रकुंवर और कितनी ही पुरानी सखियाँ, जिन्होंने उसे विस्मरण कर दिया था, प्रति दिन विरजन के दर्शनों को आने लगीं। बड़े-बड़े मान्य गण्य सज्जन जो ममता के अभिमान से हाकिमों के सम्मुख भी सिर न झुकाते थे, विरजन के द्वार दर्शन को आते थे। चन्द्रा स्वयं तो न आ सकी, परन्तु पत्र में लिखा:— 'जी चाहता है कि, तुम्हारे चरणों पर सिर रखकर घंटों रोऊँ।'

(२२)

माधवी

कभी-कभी वन के फूलों में वह सुगन्धि और रङ्ग रूप मिल जाता है, जो सजी हुई वाटिकाओं को कभी प्राप्त नहीं हो सकता। माधवी थी तो एक मूर्ख और दरिद्र मनुष्य की लड़की, परन्तु विधाता ने उसे नारियों के सभी उत्तम गुणों से सुशोभित कर दिया था। उसमें शिक्षा तथा सुधार के ग्रहण करने की विशेष योग्यता थी। माधवी और विरजन का मिलाप उस समय हुआ, जब विरजन ससुराल आई। इस भोली-भाली कन्या ने उसी समय से विरजन के संग असाधारण प्रीति

प्रकट करनी आरंभ की। ज्ञात नहीं, वह उसे देवी समझती थी या क्या? परन्तु कभी उसने विरजन के विरुद्ध एक शब्द भी मुख से न निकाला। विरजन भी उसे अपने संग सुलाती, खिलाती और अच्छे अच्छे रेशमी वस्त्र पहिनाती। इससे अधिक प्रीति वह अपनी छोटी भगिनी की भी नहीं कर सकती थी। चित्त को चित्त से सम्बन्ध होता है। यदि प्रताप को वृजराणी से हार्दिक सम्बन्ध था तो वृजराणी भी प्रताप के प्रेम में पगी हुई थी। जब कमलाचरण से उसके विवाह की बात पक्की हुई तो वह प्रतापचन्द्र से कम दुखी न हुई। हाँ लज्जावश उसके हृदय के भाव कभी प्रकट न होते थे। विवाह हो जाने के पश्चात् उसे नित्य यह चिन्ता रहती थी कि प्रतापचन्द्र के पीड़ित हृदय को कैसे तमल्ला दूँ? मेरा जीवन तो इस भाँति आनन्द से बीतता है। बेचारे प्रताप के ऊपर न जाने कैसी बीतनी हांगी! माधवी उन दिनों ग्यारहवें वर्ष में थी। उसके रंग-रूप की सुन्दरता, स्वभाव और गुण देख-देखकर आश्चर्य होता था। विरजन को अचानक यह ध्यान आया कि क्या मेरी माधवी इस योग्य नहीं कि प्रताप उसे अपने कण्ठ का हार बनायें। उस दिन से वह माधवी के सुधार और प्यार में और भी अधिक प्रवृत्त हो गई। वह सोच-सोचकर मन ही मन फूली न समाती कि जब माधवी सोलह-सत्रह वर्ष की हो जायगी, तब मैं प्रताप के पास जाऊँगी और उससे हाथ जोड़कर कहूँगी कि माधवी मेरी बहिन है। उसे आज से तुम अपनी चेरी समझो। क्या प्रताप मेरी बात टाल देंगे? नहीं, वे ऐसा नहीं कर सकते। आनन्द तो तब है कि चची स्वयं माधवी को अपनी बहू बनाने की मुझसे इच्छा करे। इसी विचार से विरजन ने प्रतापचन्द्र के प्रशंसनीय गुणों का चित्र माधवी के हृदय में खींचना आरम्भ कर दिया था, जिससे कि उसका रोम-रोम प्रताप के प्रेम में पग जाय। वह जब प्रतापचन्द्र का वर्णन करने लगती तो स्वतः उसके शब्द असामान्य रीति से मधुर और सरस हो जाते। शनैः-शनैः माधवी का कोमल हृदय प्रेमरस का आस्वादन करने लगा। 'दर्पण में बाल पड़ गया।'

भोली माधवी सोचने लगी, मैं कैसी भाग्यवती हूँ। मुझे ऐसे स्वामी मिलेंगे जिनके चरण धोने के योग्य भी मैं नहीं हूँ, परन्तु क्या वे मुझे अपनी चेरी बनायेंगे ? कुछ हो मैं अवश्य उनकी दासी बनूँगी। और यदि प्रेम में कुछ आकर्षण है, तो मैं उन्हें अवश्य अपना बना लूँगी। परन्तु उस विचारी को क्या मालूम था कि ये आशाएँ शोक बनकर नेत्रों के मार्ग से बह जायँगी। उसका पन्द्रहवाँ वर्ष पूरा भी न हुआ था कि विरजन पर गृहविनाश की आपत्तियाँ आ पड़ीं। उस आँधी के झोके ने माधवी की इस कल्पित पुष्प-वाटिका का सत्यानाश कर दिया। इसी बीच में प्रतापचन्द्र के लोप होने का समाचार मिला। आँधी ने जो कुछ अवशिष्ट रखा था, वह भी इस अग्नि ने जलाकर भस्म कर दिया।

परन्तु मानस कोई वस्तु है तो माधवी प्रतापचन्द्र की स्त्री बन चुकी। उसने अपना तन और मन उन्हें समर्पण कर दिया। प्रताप को ज्ञान नहीं। परन्तु उन्हें ऐसी अमूल्य वस्तु मिली है, जिसके बराबर संसार में कोई वस्तु नहीं तुल सकती। माधवी ने केवल एक बार प्रताप को देखा था और केवल एक ही बार उनके अमृतवचन सुने थे। मगर इसने उस चित्र को और भी उज्ज्वल कर दिया था जो उसके हृदय पर पहले ही विरजन ने खींच रखा था। प्रताप का पता नहीं है, पर माधवी उसकी प्रेमाग्नि में दिन-प्रति दिन घुलती जाती है। उस दिन से कोई ऐसा व्रत नहीं था जो माधवी न रखती हो, कोई ऐसा देवता नहीं था, जिसकी वह पूजा न करती हो। और वह सब इसलिए कि ईश्वर प्रताप को जहाँ कहीं वे हों, कुशल से रखे। इन प्रेम-कल्पनाओं ने उस बालिका को और भी अधिक हृद्, सुशील और कोमल बना दिया; स्यात् उसके चित्त ने यह निर्णय कर लिया था कि मेरा विवाह प्रतापचन्द्र से हो चुका। विरजन उसकी यह दशा देखती और रोती कि यह आग मेरी ही लगाई हुई है। यह नवकुसुम किसके कण्ठ का हार बनेगा ? यह किसकी होकर रहेगी ? हाय ! जिस बीज को मैंने इतने परिश्रम से अंकुरित किया और मधुक्षीर से सींचा, उसका फूल

इस प्रकार शाखा पर ही कुम्हलाया जाता है। विरजन तो भला कविता करने में उलझी रहती। किन्तु माधवी को यह सन्तोष भी न था। उसका प्रेमी और साथी उसके प्रियतम का ध्यान मात्र था। उस प्रियतम का जो उसके लिए सर्वथा अपरिचित था। प्रताप के चले जाने के कई मास पीछे एक दिन माधवी ने स्वप्न देखा कि वे संन्यासी हो गये हैं। आज माधवी का अपार प्रेम प्रकट हुआ है। उसे आकाश-वाणी सी हो गई कि प्रताप ने अवश्य संन्यास ले लिया। आज से वह भी तपस्विनी बन गई। उसने अपने सुख और विलास की लालसा हृदय से निकाल दी।

जब कभी बैठे बैठे माधवी का जी बहुत आकुल होता, तो वह प्रतापचन्द्र के घर चली जाती। वहाँ उसके चित्त को थोड़ी देर के लिए शान्ति मिल जाती थी। यह भवन माधवी के लिए एक पवित्र मन्दिर था। जब तक विरजन और सुवामा के हृदयों में ग्रन्थि पड़ी हुई थी, वह यहाँ बहुत कम आती थी। परन्तु जब अन्त में विरजन के पवित्र और आदर्श जीवन ने यह गाँठ खोल दी, और वे गंगा-यमुना की भाँति परस्पर गले मिल गईं, तो माधवी का आवागमन भी बढ़ गया। सुवामा के पास दिन-दिन भर बैठी रह जाती। इस भवन की एक एक अंगुल पृथ्वी प्रताप का स्मारक थी। इसी आँगन में प्रताप ने काठ के घोड़े दौड़ाये थे और इसी कुण्ड में काराज की नावें चलाई थीं। नौकाएँ तो स्यात् काल के भँवर में पड़कर डूब गईं, परन्तु घोड़ा अब भी विद्यमान था। माधवी ने उसकी जर्जरित अस्थियों में प्राण डाल दिया और उसे बाटिका में कुण्ड के किनारे एक पाटलिवृक्ष की छाया में बाँध दिया। यही भवन प्रतापचन्द्र का शयनागार था। माधवी अब उसे अपने देवता का मन्दिर समझती है। इसी पलंग ने प्रताप को बहुत दिनों तक अपने अङ्क में थपक-थपककर सुलाया था। माधवी अब उसे पुष्पों से सुसज्जित करती है। माधवी ने इस कमरे को ऐसा सुसज्जित कर दिया, जैसा वह कभी न था। चित्रों के मुख पर से धूल की यवनिका उठ गई। लैम्प का भाग्य पुनः चमक उठा। माधवी

की इस अनन्त प्रेम-भक्ति से सुवामा का दुःख भी दूर हो गया। चिर काल से उसके मुख पर प्रतापचन्द्र का नाम कभी न आया था। विरजन से मेल-मिलाप भी हो गया; परन्तु दोनों स्त्रियों में कभी प्रतापचन्द्र की चर्चा भी न होती थी। विरजन लज्जा से संकुचित थी और सुवामा क्रोध से। किन्तु माधवी के प्रेमानल से पत्थर भी पिघल गया। जब वह प्रेमविह्वल होकर प्रताप के चालकपन की बातें पूछने लगती तो सुवामा से न रहा जाता। उसकी आँखों में जल भर आता। तब दोनों की दोनों रोंतीं और दिन दिन भर प्रताप की बातें समाप्त न होतीं। क्या अब माधवी के चित्त की दशा सुवामा से छिप सकती थी? वह बहुधा सोचती कि क्या यह तपस्विनी इसी प्रकार प्रेमाग्नि में जलती रहेगी और वह भी बिना किसी आशा के? एक दिन वृजरानी ने 'कमला' का पैकेट खोला तो पहले ही पृष्ठ पर एक परम प्रतिभा-पूर्ण चित्र, विविध रङ्गों में दिखाई पड़ा। यह किमी महात्मा का चित्र था। उसे ध्यान आया कि मैंने इन महात्मा को कहीं अवश्य देखा है। सोचते सोचते अकस्मात् उसका ध्यान प्रतापचन्द्र तक जा पहुँचा। आनन्द के उमङ्ग में उल्लस पड़ी और बोली—माधवी, तनिक यहाँ आना।

माधवी फूलों की क्यारियाँ सींच रही थी। उसके चित्तविनोद का आजकल यही काय था। वह साड़ी पानी में लथपथ, सिर के बाल बिखरे, माथे पर पसीने के बिन्दु और नेत्रों में प्रेम का रस भरे हुए आकर खड़ी हो गई। विरजन ने कहा—आ, तुझे एक चित्र दिखाऊँ।

माधवी ने कहा—किसका चित्र है, देखूँ?

माधवी ने चित्र को ध्यानपूर्वक देखा। उसकी आँखों में आँसू आ गये।

विरजन—पहचान गई?

माधवी—क्यों? यह स्वरूप तो कई बार स्वप्न में देख चुकी हूँ! वदन से कान्ति बरस रही है।

विरजन—देखो वृत्तान्त भी लिखा है। माधवी ने दूसरा पन्ना उल्टा तो 'स्वामी बालाजी' शीर्षक लेख मिला।

थोड़ी देर तक दोनों तन्मय होकर यह लेख पढ़ती रहीं, तब बात-चीत होने लगी।

विरजन—मैं तो प्रथम ही जान गई थी कि उन्होंने अवश्य संन्यास ले लिया होगा।

माधवी—पृथ्वी की ओर देख रही थी, मुख से कुछ न बोली।

विरजन—तब मैं और अब मैं कितना अन्तर है? मुखमण्डल से कान्ति झलक रही है। तब ऐसे सुन्दर न थे।

माधवी—हूँ।

विरजन—ईश्वर उनकी सहायता करे। बड़ी तपस्या की है।

(नेत्रों में जल भरकर) कैसा संयोग है! हम और वे सङ्ग-सङ्ग खेले, सङ्ग-सङ्ग रहे; आज वे संन्यासी हैं और मैं त्रियोगिनी। न जाने उन्हें हम लोगों की कुछ सुध भी है या नहीं। जिमने संन्यास ले लिया, उसे किसी से क्या मतलब? जब चची के पास पत्र न लिखा तो भला हमारी सुधि क्या होगी? माधवी? बालकपन में वे कभी योगी-योगी खेलते तो मैं मिठाइयों की भिक्षा दिया करती थी।

माधवी ने रोते हुए—‘न जाने कब दर्शन होंगे।’ कहकर लज्जा में शिर झुका लिया।

विरजन—शीघ्र ही आयँगे। प्राणनाथ ने यह लेख बहुत सुन्दर लिखा है।

माधवी—एक-एक शब्द से भक्ति टपकती है।

विरजन—वक्तृता की कैसी प्रशंसा की है। उनकी वाणी में तो पहले ही जादू था, अब क्या पूछना। प्राणनाथ के चित्त पर जिसकी वाणी का ऐसा प्रभाव हुआ, वह समस्त पृथ्वी पर अपना जादू फैला सकता है।

माधवी—चलो, चची के यहाँ चलें।

विरजन—हाँ, उनका तो ध्यान ही नहीं रहा। देखें क्या कहती हैं। प्रसन्न तो क्या होंगी?

माधवी—उनकी तो अभिलाषा ही यह थी, प्रसन्न क्यों न होंगी?

विरजन—चल ! माता ऐसा समाचार सुनकर कभी प्रसन्न नहीं हो सकती ।

दोनों स्त्रियाँ घर से बाहर निकलीं । विरजन का मुखकमल मुझाया हुआ था, पर माधवी का अंग-अंग हर्ष से खिला जाता था । कोई उससे पृछे—‘तेरे चरण अब पृथ्वी पर क्यों नहीं पड़ते ? तेरे पीले वदन पर क्यों प्रसन्नता की लाली झलक रही है ? तुझे कौन-सी सम्पत्ति मिल गई ? तू अब शोकान्वित और उदास क्यों नहीं दिखाई पड़ती ? तुझे अपने प्रियतम से मिलने की अब कोई आशा नहीं, तुझपर प्रेम की दृष्टि कभी नहीं पड़ी, तेरे कानों में प्रेम की ध्वनि कभी नहीं पहुँची, फिर तू क्यों फूली नहीं समाती ?’ इसका उत्तर माधवी क्या देगी ? कुछ नहीं । वह शिर झुका लेगी, उसकी आँखें नीचे झुक जायँगी, जैसे डालियाँ फूलों के भार से झुक जाती हैं । कदाचित् उनसे कुछ अश्रुविन्दु भी टपक पड़ें; किन्तु उसकी जिह्वा से एक शब्द भी न निकलेगा ।

माधवी प्रेम के मद से मतवाली है । उसका हृदय प्रेम से उन्मत्त है । उसका प्रेम हाट का सौदा नहीं । उसका प्रेम किसी वस्तु का भूखा नहीं । वह प्रेम के बदले प्रेम नहीं चाहती । उसे अभिमान है कि ऐसे पवित्रात्मा पुरुष की मूर्ति मेरे हृदय में प्रकाशमान है । यह अभिमान उसकी उन्मत्तता का कारण है ; उसके प्रेम का पुरस्कार है ।

दूसरे मास में वृजरानी ने ‘बालाजी’ के स्वागत में एक प्रभावशाली कविता लिखी । यह एक विलक्षण रचना थी । जब यह मुद्रित हुई तो विद्या-जगत् विरजन की काव्य-प्रतिभा से परिचित होते हुए भी, चमत्कृत हो गया । वह कल्पना-रूपी पक्षी जो काव्य-गगन में वायु-मण्डल से भी आगे निकल जाता था ; अबकी तारा बनकर चमका । एक-एक शब्द आकाशवाणी की ज्योति से प्रकाशित था । जिन लोगों ने यह कविता पढ़ी, वे बालाजी के भक्त हो गये । ‘कवि वह सपेरा है जिसकी पिटारी में सपों के स्थान में हृदय बन्द होते हैं ।

[२३]

काशी में आगमन

जब से वृजरानी का काव्यचन्द्र उदय हुआ, तभी से उसके यहाँ सदैव महिलाओं का जमघट लगा रहता था। नगर में स्त्रियों की कई सभाएँ थीं। उनके सम्बन्ध का सारा भार उसी को उठाना पड़ता था। इसके अतिरिक्त अन्य नगरों से भी बहुधा स्त्रियाँ उससे भेंट करने को आती रहती थीं। जो तीर्थयात्रा करने के लिए काशी आता वह विरजन से अवश्य मिलता। राजा धर्मसिंह ने उसकी कविताओं का सर्वाङ्ग-सुन्दर संग्रह प्रकाशित किया था। इस संग्रह ने उसके काव्य-चमत्कार का डझा बजा दिया था। भारतवर्ष की कौन कहे, यूरोप और अमेरिका के प्रतिष्ठित कवियों ने भी उसे उसकी काव्य-मनोहरता पर धन्यवाद दिया था। भारतवर्ष में एकाध ही कोई रसिक मनुष्य रहा होगा, जिसका पुस्तकालय उसकी पुस्तक से सुशोभित न होगा। विरजन की कविताओं की प्रतिष्ठा करनेवालों में बालाजी का पद सबसे ऊँचा था। वे अपनी प्रभावशालिनी वक्तृताओं और लेखों में बहुधा उसी के वाक्यों का प्रमाण दिया करते थे। उन्होंने सरस्वती में एक बार उसके संग्रह की सविस्तर समालोचना भी लिखी थी।

एक दिन प्रातःकाल ही सीता, चन्द्रकुँवर, रुक्मिणी और रानी विरजन के घर आईं। चन्द्रा ने इन स्त्रियों को फर्श पर बिठाया और आदर-सत्कार किया। विरजन वहाँ नहीं थी, क्योंकि उसने प्रभात का समय काव्य-चिन्तन के लिए नियत कर लिया था। उस समय वह किसी आवश्यक कार्य के अतिरिक्त सखियों-सहेलियों से मिलती-जुलती नहीं थी। वाटिका में एक रमणीक कुंज था। गुलाब की सुगन्धि से सुरभित वायु चलती थी। वहीं विरजन एक शिलासन पर बैठी हुई काव्य-रचना किया करती थी। वह काव्यरूपी समुद्र से जिन मोतियों को निकालती, उन्हें माधवी लेखनी की माला में पिरो लिया करती थी।

आज बहुत दिनों के बाद नगर-निवासियों के अधिक अनुरोध करने पर विरजन ने बालाजी को काशी में आने का निमन्त्रण देने के लिए लेखनी को उठाया था। बनारस ही वह नगर था, जिसका स्मरण कभी-कभी बालाजी को व्यग्र करा दिया करता था। किन्तु काशीवालों के निरन्तर आग्रह करने पर भी उन्हें काशी आने का अवकाश न मिलता था। वे मिंगल और रंगून तक गये; परन्तु उन्होंने काशी की ओर मुख न फेरा। इस नगर को वे अपना परीक्षाभवन समझते थे। इसी लिए आज विरजन उन्हें काशी आने का निमन्त्रण दे रही है। लोगों का विचार है कि यह निमन्त्रण उन्हें अवश्य खींच लायगा। जब कोई नवीन विचार आ जाता है, तो विरजन का चन्द्रानन चमक उठता है और माधवी के वदन पर प्रसन्नता की झलक आ जाती है। वाटिका में बहुत से पाटलि-पुष्प खिले हुए हैं, रजनी की ओस से मिलकर वे इस समय परम शोभा दे रहे हैं, परन्तु इस समय जो नवविकास और छटा इन दोनों पुष्पों पर है, उसे देख-देखकर दूसरे फूल लज्जित हुए जाते हैं।

नौ बजते बजते विरजन घर में आई। सेवती ने कहा—आज बड़ी देर लगाई।

विरजन—कुन्ती ने सूर्य को बुलाने के लिए कितनी तपस्या की थी?

सीता—बालाजी बड़े निष्ठुर हैं। मैं तो ऐसे मनुष्य से कभी न बोलूँ।

रुक्मिणी—जिसने संन्यास ले लिया, उसे घरबार से क्या नाता?

चन्द्रकुँवर—यहाँ आयँगे तो मैं मुख पर कह दूँगी कि महाशय, यह नखरे कहाँ सीखे?

रुक्मिणी—महारानी! ऋषी-महात्माओं का तो शिष्टाचार किया करो। जिह्वा क्या है कतरनी है।

चन्द्रकुँवर—और क्या, कब तक सन्तोष करे जी! सब जगह जाते हैं, यहीं आते पैर थकते हैं।

विरजन—(मुसकुराकर) अब बहुत शीघ्र दर्शन पाओगी। मुझे विश्वास है कि इस मास में वे अवश्य आयेंगे।

सीता—धन्य भाग्य कि दर्शन मिलेंगे। मैं तो जब उनका वृत्तान्त पढ़ती हूँ तो यही जी चाहता है कि पाऊँ तो चरण पकड़कर घण्टों रोऊँ।

रुक्मिणी—ईश्वर ने उनके हाथों में बड़ा यश दिया है। दारानगर की रानी साहिबा मर ही चुकी थीं, साँस टूट रही थी कि बालाजी को सूचना हुई। झट आ पहुँचे और क्षणमात्र में उठाकर बैठा दिया। हमारे मुंशीजी (पति) उन दिनों वहीं थे। कहते थे कि रानीजी ने कोश की कुञ्जी बालाजी के चरणों पर रख दी और कहा—‘आप इसके स्वामी हैं।’ बालाजी ने कहा—‘मुझे धन की आवश्यकता नहीं, आप अपने राज्य में तीन सौ गोशालाएँ खुलवा दीजिए।’ मुख से निकलने की देर थी। आज दारानगर में दूध की नदी बहती है। ऐसा महात्मा कौन होगा ?

चन्द्रकुँवर—राजा नवलखा का तपेदिक उन्हीं की वृत्तियों से छूटा। सारे वैद्य, डॉक्टर जवाब दे चुके थे। जब बालाजी चलने लगे, तो महारानीजी ने नौ लाख का मोतियों का हार उनके चरणों पर रख दिया। बालाजी ने उसकी ओर देखा तक नहीं।

रानी—कैसे रखे मनुष्य हैं ?

रुक्मिणी—हाँ और क्या, उन्हें उचित था कि, हार ले लेते ; नहीं नहीं कण्ठ में डाल लेते।

विरजन—नहीं, लेकर रानी को पहिना देते। क्यों सखी ?

रानी—हाँ, मैं उस हार के लिए गुलामी लिख देती।

चन्द्रकुँवर—हमारे यहाँ (पति) तो भारत-सभा के सभ्य बैठे हैं। ढाई सौ रुपये लाख यत्न करके रख छोड़े थे ; उन्हें यह कहकर उठा ले गये कि घोड़ा लेंगे। क्या भारत-सभावाले बिना घोड़े के नहीं चलते ?

रानी—कल ये लोग श्रेणी बाँधकर मेरे घर के सामने से जा रहे थे। बड़े भले मालूम होते थे।

इतने ही में सेवती नवीन समाचार-पत्र ले आई।

विरजन ने पूछा—‘कोई ताजा समाचार है ?’

सेवती—हाँ, बालाजी मानिकपुर आये हैं। एक अहीर ने अपनी पुत्री के विवाह का निमन्त्रण भेजा था। उसपर प्रयाग से भारत-सभा के सभ्यों सहित रात को चलकर मानिकपुर पहुँचे। अहीरों ने बड़े उत्साह और समारोह के साथ उनका स्वागत किया है और सबने मिलकर पाँच सौ गौवें उन्हें भेंट दी हैं। बालाजी ने वधू को आशीर्वाद दिया और दूल्हे को हृदय से लगाया। पाँच अहीर भारत-सभा के सभ्य नियत हुए।

विरजन—बड़े अच्छे समाचार हैं। माधवी इसे काटके रख लेना। और कुछ ?

सेवती—पटना के पासियों ने एक ठाकुरद्वारा बनवाया है। वहाँ की भारत-सभा ने बड़ी धूमधाम से उसका उत्सव किया।

विरजन—पटना के लोग बड़े उत्साह से कार्य कर रहे हैं।

चन्द्रकुँवर—गहूरियाँ भी अब सिन्दूर लगायँगी ! पासी लोग ठाकुरद्वारा बनवायँगे !

रुक्मिणी—क्यों वे मनुष्य नहीं हैं ? ईश्वर ने उन्हें नहीं बनाया ? आप ही अपने स्वामी की पूजा करना जानती हैं ?

चन्द्रकुँवर—चलो, हटो, मुझे पासियों से मिलाती हो। यह मुझे अच्छा नहीं लगता।

रुक्मिणी—हाँ तुम्हारा रंग गोरा है न ! और वस्त्र-आभूषणों से सजी हुई हो। बस इतना ही अन्तर है कि और कुछ ?

चन्द्रकुँवर—इतना ही अन्तर क्यों है ? पृथ्वी को आकाश से मिलाती हो ? यह मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं कछवाहों के वंश में हूँ, कुछ खबर है ?

रुक्मिणी—हाँ जानती हूँ और नहीं जानती थी तो अब जान गई। तुम्हारे ठाकुर साहब (पति) किसी पासी से बदकर मल्ल-युद्ध करेंगे ? या सिर पर टेढ़ी पाग ही रखना जानते हैं ? मैं तो जानती हूँ कि कोई छोटा-सा पासी भी उन्हें काँख तले दबा लेगा।

विरजन—अच्छा अब इस विवाद को जाने दो। तुम दोनों जब आती हो, लड़ती ही आती हो।

सेवती—पिता और पुत्र का कैसा संयोग हुआ है? ऐसा मालूम होता है कि मुंशी सालिग्राम ने प्रतापचन्द्र ही के लिए संन्यास लिया था। यह सब उन्हीं की शिक्षा का फल है।

रुक्मिणी—हाँ और क्या? मुंशी सालिग्राम तों अब स्वामी ब्रह्मानन्द कहलाते हैं। प्रताप को देखकर पहचान गये होंगे।

सेवती—आनन्द से फूले न समाये होंगे।

रुक्मिणी—यह भी ईश्वर की प्रेरणा थी, नहीं तो प्रतापचन्द्र मानसरोवर क्या करने जाते?

सेवती—ईश्वर की इच्छा के बिना कोई बात होती है?

विरजन—तुम लोग मेरे लालाजी को तो भूल ही गई। ऋषिकेश में पहले लालाजी ही से प्रतापचन्द्र की भेंट हुई थी। प्रताप उसके साथ साल भर तक रहे। तब दोनों आदमी मानसरोवर की ओर चले।

रुक्मिणी - हाँ, प्राणनाथ के लेख में तो यह वृत्तान्त था। बालाजी तो यही कहते हैं कि मुंशी संजीवनलाल से मिलने का सौभाग्य मुझे प्राप्त न होता तो मैं भी माँगने-खानेवाले साधुओं में ही होता।

चन्द्रकुँवर—इनकी आत्मोन्नति के लिए विधाता ने पहले ही से सब सामान कर दिये थे।

सेवती—तभी इतनी-सी अवस्था में भारत के सूर्य बने हुए हैं। अभी पच्चीसवें वर्ष में होंगे?

विरजन—नहीं, तीसवाँ वर्ष है; मुझसे साल भर के जेठे हैं।

सेवती—सुवामा तो उनकी कीर्ति सुन-सुनकर बहुत खुश होती होंगी।

रुक्मिणी—मैंने तो उन्हें जब देखा, उदास ही देखा।

चन्द्रकुँवर—उनके सारे जीवन की अभिलाषाओं पर ओस पड़ गई। उदास क्यों न होंगी?

रुक्मिणी—उन्होंने तो देवीजी से यही वरदान माँगा था?

चन्द्रकुँअर—तो क्या जाति की सेवा गृहस्थ रहकर नहीं हो सकती ?
रुक्मिणी—जाति ही की क्या कोई भी सेवा गृहस्थ रहकर नहीं हो सकती । गृहस्थ केवल अपने बाल बच्चों की सेवा कर सकता है ।

चन्द्रकुँअर—करनेवाले सब कुछ कर सकते हैं, न करनेवालों के लिए सौ बहाने हैं ।

एक मास और बीता । विरजन की नई कविता स्वागत का सन्देश लेकर बालाजी के पास पहुँची; परन्तु यह न प्रकट हुआ कि उन्होंने निमन्त्रण स्वीकार किया या नहीं । कारीवासी प्रतीक्षा करते करते थक गये । बालाजी प्रतिदिन दक्षिण की ओर बढ़ते चले जाते थे । निदान लोग निराश हो गये और सबसे अधिक निराशा विरजन को हुई ।

एक दिन जब किसी को ध्यान भी न था कि बालाजी काशी आयँगे, प्राणनाथ ने आकर कहा—‘वहिन ! लो प्रसन्न हो जाओ, आज बालाजी आ रहे हैं ।’

विरजन कुछ लिख रही थी, हाथों से लेखनी छूट पड़ी । माधवी उठकर द्वार की ओर लपकी । प्राणनाथ ने हँसकर कहा—‘क्या अभी आ थोड़े ही गये हैं कि इतनी उद्विग्न हुई जाती हो !’

माधवी—कब आयँगे ? इधर ही से होकर जायँगे न ?

प्राणनाथ—यह तो नहीं ज्ञात है कि किधर से आयँगे । उन्हें आडम्बर और धूमधाम से बड़ी घृणा है । इसीलिए पहिले से आने की तिथि नहीं नियत की । राजा साहब के पास आज प्रातःकाल एक मनुष्य ने आकर सूचना दी कि बालाजी आ रहे हैं और कहा है कि मेरी अगवानी के लिए धूमधाम न हो, किन्तु यहाँ के लोग कब मानते हैं ? अगवानी होगी, समारोह के साथ सवारी निकलेगी और ऐसी कि इस नगर के इतिहास में स्मरणीय हो । चारों ओर आदमी छूटे हुए हैं । ज्यों ही उन्हें आते देखेंगे, वे लोग प्रत्येक महल्ले में टेलिफोन द्वारा सूचना दे देंगे । कॉलेज और स्कूलों के विद्यार्थी वर्दियों पहिने और झण्डियाँ लिये इन्तजार में खड़े हैं । घर-घर पुष्पवर्षा की तैयारियाँ

हो रही हैं। बाज़ार में दूकानें सजाई जा रही हैं। नगर में एक धूम-सी मची हुई है।

माधवी—इधर से जायेंगे तो हम उन्हें रोक लेंगी।

प्राणनाथ—हमने कोई तैयारी तो की ही नहीं। रोक क्या लेंगे ? और यह भी तो नहीं ज्ञात है कि किधर से जायेंगे।

विरजन—(सोचकर) आरती उतारने का प्रबन्ध तो करना ही होगा।

प्राणनाथ—हाँ, क्या अब इतना भी न होगा ? मैं बाहर बिछावन आदि बिछवाता हूँ।

प्राणनाथ बाहर की तैयारियों में लगे। माधवी फूल चुनने लगी ; विरजन ने चाँदी का थाल धाँधोकर स्वच्छ किया। सेवती और चन्दा भीतर सारी वस्तुएँ क्रमानुसार सजाने लगीं।

माधवी हर्ष के मारे फूली न समाती थी। बारम्बार चौंक चौंक-कर द्वार की ओर देखती कि कहीं आ तो नहीं गये। बारम्बार कान लगाकर सुनती कि कहीं बाजे की ध्वनि तो नहीं आ रही है। हृदय हर्ष के मारे धड़क रहा था। फूल चुनती थी, किन्तु ध्यान दूसरी ओर था। हाथों में कितने ही कोंटे चुभा लिये। फूल के साथ कः शाखाएँ मरोड़ डाली। कई बार शाखाओं में उलझकर गिरो। कई बार साड़ी कांटों में फँसा दी। उस समय उसकी दशा बिलकुल बच्चों की-सी थी।

किन्तु विरजन का वदन बहुत ही मलिन था। जैसे जलपूर्ण पात्र तनिक हिलने से भी छलक जाता है, उसी प्रकार ज्यों-ज्यों प्राचीन घटनाएँ स्मरण आती थीं, त्यों-त्यों उसके नेत्रों से अश्रु छलक पड़ते थे। आह ! कभी वे दिन थे कि हम और वे भाई-बहिन थे। साथ खेलते थे, साथ रहते थे। आज चौदह वर्ष व्यतीत हुए, उनका मुख देखने का सौभाग्य भी न हुआ। तब मैं तनिक भी रोती तो वे मेरे आँसू पोंछते और मेरा जी बहलाते। अब उन्हें क्या सुधि कि ये आँखें कितनी रोई हैं और इस हृदय ने कैसे-कैसे कष्ट उठाये हैं। क्या खबर थी कि हमारे भाग्य ऐसे दृश्य दिखायेंगे ? एक वियोगिन हो जायगी और दूसरा संन्यासी।

अकस्मात् माधवी को ध्यान आया कि सुवामा को कदाचित् बालाजी के आने की सूचना न हुई हो। वह विरजन के पास आकर बोली—‘मैं तनिक चची के यहाँ जाती हूँ। न जाने किसी ने उनसे कहा या नहीं?’

प्राणनाथ बाहर से आ रहे थे, यह सुनकर बोले—‘वहाँ सबसे पहले सूचना दी गई। भली भाँति तैयारियाँ हो रही हैं। बालाजी भी सीधे घर ही की ओर पधारेंगे। इधर से अब न आयेंगे।’

विरजन—तो हम लोगों को चलना चाहिए। कहीं देर न हो जाय।

माधवी—आरती का थाल लाऊँ?

विरजन—कौन ले चलेगा? महरी को बुला लो (चौककर) अरे! तेरे हाथों में यह रुधिर कहाँ से आया।

माधवी—ऊँह! फूल चुनती थी, काँटे लग गये होंगे।

चन्द्रा—अभी नई साड़ी आई है। आज ही फाड़ के रख दीं।

माधवी—तुम्हारी बला से।

माधवी ने यह कह तो दिया, किन्तु आँखें अश्रुपूर्ण हो गईं। चन्द्रा साधारणतः बहुत भली स्त्री थी। किन्तु जबसे वावू राधाचरण ने जाति-सेवा के लिए नौकरी से इस्तीफा दे दिया था, वह बालाजी के नाम से चिढ़ती थी। विरजन से तो कुछ कह न सकती थी; परन्तु माधवी को छेड़ती रहती थी। विरजन ने चन्द्रा की ओर घूरकर माधवी से कहा—‘जाओ, सन्दूक से दूसरी साड़ी निकाल लो। इसे रख आओ, राम-राम, मार के हाथ छलनी कर डाले।’

माधवी—देर हो जायगी, मैं इसी भाँति चलूँगी।

विरजन—नहीं, अभी घण्टा भर से अधिक अवकाश है।

यह कहकर विरजन ने प्यार से माधवी के हाथ धोये। उसके बाल गूँथे, एक सुन्दर साड़ी पहिनाई, चादर ओढ़ाई, और उसे हृदय से लगाकर सजल नेत्रों से देखते हुए कहा—बहिन! देखो धीरज हाथ से न जाय।’

माधवी मुसकुराकर बोली—तुम मेरे ही संग रहना, मुझे सँभालती रहना । मुझे अपने हृदय पर आज भरोसा नहीं है ।

विरजन ताड़ गई कि आज प्रेम ने उन्मत्तता का पद ग्रहण किया है और कदाचित् यही उसकी पराकाष्ठा है । हा ! यह बावली वालू की भीत उठा रही है ।

माधवी थोड़ी देर बाद विरजन, सेवती, चन्द्रा आदि कई स्त्रियों के संग सुवामा के घर चली । वे वहाँ की तैयारियाँ देखकर चकित हो गईं । द्वार पर एक बहुत बड़ा चँदोवा, थिछावन, शीशे और भाँति-भाँति की सामग्रियों से सुसज्जित खड़ा था । बधाई बज रही थी । बड़े-बड़े टोकरों में मिठाइयाँ और मेवे रखे हुए थे । नगर के प्रतिष्ठित सभ्य, उत्तमोत्तम वस्त्र पहिने हुए स्वागत करने को खड़े थे । एक भी फिटन या गाड़ी दिखाई नहीं देती थी । क्योंकि वालाजी सर्वदा पैदल ही चला करते थे । बहुत से लोग गले में झोलियाँ डाले हुए दिखाई देते थे, जिनमें वालाजी पर समर्पण करने के लिए रुपये-पैसे भरे हुए थे । राजा धर्मसिंह के पाँचों लड़के रङ्गीन वस्त्र पहिने, केसरिया पगड़ी बाँधे रेशमी झण्डियाँ कमर में खोंसे बिगुल बजा रहे थे । ज्यों ही लोगों की दृष्टि विरजन पर पड़ी, सहस्रों मस्तक शिष्टाचार के लिए झुक गये । जब ये देवियाँ भीतर गईं तो वहाँ भी आँगन, दालान और कमरे नवागत वधू की भाँति सुसज्जित दिखे । सैकड़ों स्त्रियाँ मङ्गल गाने के लिए बैठी थीं । पुष्पों की राशियाँ ठौर-ठौर पर पड़ी थीं । सुवामा एक श्वेत साड़ी पहिने सन्तोष और शान्ति की मूर्ति बनी हुई द्वार पर खड़ी थी । विरजन और माधवी को देखते ही सजलनयन हो गई । विरजन बोली—चची ! आज इस घर के भाग्य जग गये । सुवामा ने रोकर कहा—‘तुम्हारे कारण मुझे आज यह दिन देखने का सौभाग्य हुआ । ईश्वर तुम्हें इसका फल दे ।’

दुखिया माता के अन्तःकरण से यह आशीर्वाद निकला । एक दुखिया माता के शाप ने राजा दशरथ को पुत्रशोक में मृत्यु का स्वाद चखाया था । क्या सुवामा का यह आशीर्वाद प्रभावहीन होगा ?

दोनों अभी इसी प्रकार बातें कर रही थीं कि घण्टे और शंख की ध्वनि आने लगी। धूम मची कि बालाजी आ पहुँचे। स्त्रियों ने मंगल-गान आरम्भ किया। माधवी ने आरती का थाल ले लिया और मार्ग की ओर टकटकी बाँधकर देखने लगी। कुछ ही काल में अद्वैताम्बर-धारी नवयुवकों का समुदाय दिखाई पड़ा। भारत-सभा के सवा सौ सभ्य घोड़ों पर सवार चले आते थे। उनके पीछे अगणित मनुष्यों का झुण्ड था। सारा नगर दूट पड़ा। कन्धे से कन्धा छिला जाता था। मानों समुद्र की तरंगें बढ़ती चली आती हैं। इस भीड़ में बालाजी का मुखचन्द्र ऐसा दिखाई पड़ता था, मानों मेघान्छादित चन्द्र उदय हुआ है। ललाट पर अरुण चंदन का तिलक था और कण्ठ में एक गेरुए रंग की चादर पड़ी हुई थी।

सुवामा द्वार पर खड़ी थी, ज्यों ही बालाजी का स्वरूप उसे दिखाई दिया, धीरज हाथ से जाता रहा। द्वार से बाहर निकल आई और शिर झुकाये, नेत्रों से मुक्ताहार गँथती बालाजी की ओर चली। आज उसने अपना खोया हुआ लाल पाया है। वह उसे हृदय से लगाने के लिए उद्विग्न है।

सुवामा को इस प्रकार आते देखकर सब लोग रुक गये। विदित होता था कि आकाश से कोई देवी उतर आई है। चतुर्दिक सन्नाटा छा गया। बालाजी ने कई डग आगे बढ़कर माताजी को प्रणाम किया और उनके चरणों पर गिर पड़े। सुवामा ने उनका मस्तक अपने अङ्गु में लिया। आज उसने अपना खोया हुआ लाल पाया है। उसपर आँखों से मोतियों की वृष्टि कर रही है।

उस उत्साहवर्द्धक दृश्य को देखकर लोगोंके हृदय जातीयता के मद से मतवाले हो गये। पचास सहस्र स्वर से ध्वनि आई 'बालाजी की जय', मेघ गर्जा और चतुर्दिक से पुष्पवृष्टि होने लगी। फिर उसी प्रकार दूसरी बार मेघ की गर्जना हुई 'मुंशी शालिग्राम की जय' और सहस्रों मनुष्य स्वदेश-प्रेम के मद से मतवाले होकर दौड़े। और सुवामा के चरणों की रज माथे पर मलने लगे। इन ध्वनियों से

सुदामा ऐसी प्रमुदित हो रही थी, जैसे महुअर के सुनने से नागिन मत-वाली हो जाती है। आज उसने अपना खोया हुआ लाल पाया है। अमूल्य रत्न पाने से वह रानी हो गई है। इस रत्न के कारण आज उसके चरणों की रज लोगों के नेत्रों का अंजन और माथे का चन्दन बन रही है।

अपूर्व दृश्य था। वारम्बार जयकार की ध्वनि उठती थी और स्वर्ग के निवासियों को भारत की जागृति का शुभ-संवाद सुनाती थी। माता अपने पुत्र को कलेजे से लगाये हुए है। बहुत दिन के अनन्तर उसने अपना खोया हुआ लाल पाया है। वह लाल जो उसकी जन्म भर की कमाई था। फूल चारों ओर से निछावर हो रहे हैं। स्वर्ण और रत्नों की वर्षा हो रही है। माता और पुत्र कमर तक पुष्पों के समुद्र में डूबे हुए हैं। ऐसा प्रभावशाली दृश्य किसके नेत्रों ने देखा होगा ?

सुदामा वालाजी का हाथ पकड़े हुए घर की ओर चली। द्वार पर पहुँचने ही स्त्रियाँ मंगलगीत गाने लगीं और माधवी स्वर्ण-रचित थाल में धूप, दीप और पुष्पों से आरती करने लगी। विरजन ने फूलों की माला—जिसे माधवी ने अपने रक्त से रञ्जित किया था—उन्के गले में डाल दी। वालाजी ने सजल नेत्रों से विरजन की ओर देखकर प्रणाम किया।

माधवी को वालाजी के दर्शन की कितनी अभिलाषा थी ; किन्तु इस समय उसके नेत्र पृथ्वी की ओर झुके हुए हैं। वह वालाजी की ओर नहीं देख सकती। उसे भय है कि मरे नेत्र हृदय के भेद को खोल देंगे। उनमें प्रेमरस भरा हुआ है। अवतक उसकी सबसे बड़ी अभिलाषा यह थी कि वालाजी का दर्शन पाऊँ। आज प्रथम बार माधवी के हृदय में नई अभिलाषाएँ उत्पन्न हुई हैं ; आज अभिलाषाओं ने शिर उठाया है, मगर पूर्ण होने के लिए नहीं ; आज अभिलाष-वाटिका में एक नवीन कली लगी है, मगर खिलने के लिए नहीं ; वरन् मुझाने के लिए और मुझाकर मिट्टी में मिल जाने के लिए। माधवी को कौन समझाये कि तू इन अभिलाषाओं को हृदय में न उत्पन्न होने दे। ये अभि-

लाषाँ तुझे बहुत रुलायँगी। तेरा प्रेम काल्पनिक है। तू उसके स्वाद से परिचित है। क्या अब वास्तविक प्रेम का स्वाद लिया चाहती है।

[२४]

प्रेम का स्वप्न

मनुष्य का हृदय अभिलाषाओं का क्रीड़ास्थल और कामनाओं का आवास है। कोई समय वह था कि माधवी माता के अंक में खेलती थी। उस समय हृदय अभिलाषा और चेष्टाहीन था। किन्तु जब मिट्टी के घरोंदे बनाने लगी, उस समय मन में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि मैं भी अपनी गुड़ियों का विवाह करूँगी। सब लड़कियाँ अपनी गुड़ियाँ ब्याह रही हैं; क्या मेरी गुड़ियाँ कुँवारी रहेंगी? मैं अपनी गुड़िया के लिए गहने बनवाऊँगी। उसे वस्त्र पहिनाऊँगी, उसका विवाह रचाऊँगी। इस इच्छा ने उसे कई मास तक रुलाया। पर गुड़िया के भाग्य में विवाह न बढ़ा था। एक दिन मेघ घिर आये और मूसलधार पानी बरसा। घरोंदा वृष्टि में बह गया और गुड़ियों के विवाह की अभिलाषा अपूर्ण ही रह गई।

कुछ काल और बीता। वह माता के संग विरजन के यहाँ आने-जाने लगी। उसकी मीठी-मीठी बातें सुनती और प्रसन्न होती, उसके थाल में खाती और उसकी गोद में सोती। उस समय भी उसके हृदय में यह इच्छा थी कि मेरा भवन परम सुन्दर होता, उसमें चाँदी के किवाड़ लगे होते, भूमि ऐसी स्वच्छ होती कि मक्खी बैठे और फिसल जाय। मैं विरजन को अपने घर ले जाती, वहाँ अच्छे अच्छे पकान्न बनाती और खिलाती। उत्तम पलंग पर सुलाती और भली-भाँति उसकी सेवा करती। यह इच्छा वर्षों तक हृदय में चुटकियाँ लेती रही। किन्तु उसी घरोंदे की भाँति यह घर भी ढह गया और आशाएँ निराशा में परिवर्तित हो गईं।

कुछ काल और बीता, यौवन-काल का उदय हुआ। विरजन ने उसके चित्त पर प्रतापचन्द्र का चित्र खींचना आरम्भ किया। उन दिनों इस चर्चा के अतिरिक्त उसे कोई बात अच्छी ही न लगती थी। निदान उसके हृदय में प्रतापचन्द्र की चेरी बनने की इच्छा उत्पन्न हुई। पड़े-पड़े हृदय से बातें किया करती। रात्रि में जागरण करके मन का मोदक खाती। इन विचारों से चित्त पर एक उन्माद सा हो जाता; किन्तु प्रतापचन्द्र इसी बीच में गुप्त हो गये और उसी मिट्टी के घरौंदे की भाँति ये हवाई किले भी ढह गये। आशा के स्थान पर हृदय में शोक रह गया।

अब निराशा ने उसके हृदय में आशा का स्थान ही शेष न रखा। वह देवताओं की उपासना करने लगी, व्रत रखने लगी कि प्रतापचन्द्र पर समय की कुदृष्टि न पड़ने पाये। इस प्रकार अपने जीवन के कई वर्ष उसने तपस्विनी बनकर व्यतीत किये। कल्पित प्रेम के उल्लास में चूर रहती। किन्तु आज तपस्विनी का व्रत टूट गया। मन में नूतन अभिलाषाओं ने सिर उठाया। दस वर्ष की तपस्या एक क्षण में भंग हो गई। क्या यह इच्छा भी उसी मिट्टी के घरौंदे की भाँति पददलित हो जायगी ?

आज जबसे माधवी ने बालाजी की आरती उतारी है, उसके आँसू नहीं रुके। सारा दिन बीत गया। एक-एक करके तारे निकलने लगे। सूर्य थककर छिप गया और पक्षीगण घोंसलों में विश्राम करने लगे; किन्तु माधवी के नेत्र नहीं थके। वह सोचती है, कि हाय ! क्या मैं इसी प्रकार रोने के लिए बनाई गई हूँ ? मैं कभी हँसी भी थी कि, जिसके काहण इतना रोती हूँ ? हाय ! रोते-रोते आधी आयु बीत गई, क्या यह शेष आयु भी इसी प्रकार बीतेगी ? क्या मेरे जीवन में एक दिन भी ऐसा न आयगा, जिसे स्मरण करके सन्तोष हो कि मैंने भी कभी सुदिन देखे थे ? आज के पहले माधवी कभी ऐसी नैराश्य-पीड़िता और छिन्न-हृदया नहीं हुई थी। वह अपने कल्पित प्रेम में निमग्न थी। आज उसके हृदय में नवीन अभिलाषाएँ उत्पन्न हुई हैं। अश्रु उन्हीं के

प्रति हैं। जो हृदय सोलह वर्ष तक आशाओं का आवास रहा हो, वही इस समय माधिवी की भावनाओं का अनुमान कर सकता है।

सुवामा के हृदय में भी नवीन इच्छाओं ने शिर उठाया है। जब तक बालाजी को देखा न था, तब तक उमकी सबसे बड़ी अभिलाषा यह थी कि वह उन्हें आँख भरकर देखती और हृदय शीतल कर लेती। आज जब आँख भर देख लिया तो कुछ और देखने को इच्छा उत्पन्न हुई। शोक ! वह इच्छा उत्पन्न हुई माधवी के घरौंदे की भाँति मिट्टी में मिल जाने के लिए।

आज सुवामा, विरजन और बालाजी में सायंकाल तक बातें होती रहीं। बालाजी ने अपने अनुभवों का वर्णन किया। सुवामा ने अपनी रामकहानी सुनाई और विरजन ने कहा थोड़ा, किन्तु सुना बहुत। मुंशी संजीवनलाल के संन्यास का समाचार पाकर दोनों रोई। जब दीपक जलने का समय आ पहुँचा तो बालाजी गंगा की ओर सन्ध्या करने चले गये और सुवामा भोजन बनाने बैठी। आज बहुत दिनों के पश्चात् सुवामा मन लगाकर भोजन बना रही है। दोनों बातें करने लगीं।

सुवामा—बेटी ! मेरी यह हार्दिक अभिलाषा थी कि मेरा लड़का संसार में प्रतिष्ठित हो और ईश्वर ने मेरी लालसा पूरी कर दी। प्रताप ने पिता का और कुल का नाम उज्ज्वल कर दिया। आज जब प्रातः-काल मेरे स्वामीजी की जय मनाई जा रही थी, तो मेरा हृदय उमड़-उमड़ आता था। मैं केवल इतना चाहती हूँ कि वे ! यह वैराग्य त्याग दें। देश का उपकार करने से मैं उन्हें नहीं रोकती। मैंने तो देवीजी से यही वरदान माँगा था, परन्तु उन्हें संन्यासी के वेश में देखकर मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जाता है।

विरजन सुवामा का अभिप्राय समझ गई। बोली—‘चची ! यह बात तो मेरे चित्त में पहिले ही से जमी हुई है ; अवसर पाते ही अवश्य छेड़ूँगी ?’

सुवामा—अवसर तो कदाचित् ही मिले। इनका कौन ठिकाना ? अभी जी में आये, कहीं चल दें। सुनती हूँ सोटा हाथ में लिये अकेले

बनों में घूमते हैं। मुझसे अब बेचारी माधवी की दशा नहीं देखी जाती। उसे देखती हूँ तो जैसे कोई मेरे हृदय को मसोसने लगता है। मैंने बहुतेरी स्त्रियाँ देखीं और अनेकों का वृत्तान्त पुस्तकों में पढ़ा; किन्तु ऐसा प्रेम कहीं नहीं देखा। बेचारी ने आधी आयु रो-रोकर काट दी और कभी मुख न मैला किया। मैंने कभी उसे रोते नहीं देखा; परन्तु रोनेवाले नेत्र और हँसनेवाले मुख छिपे नहीं रहते। मुझे ऐसी ही पुत्रवधू की लालसा थी, सो भी ईश्वर ने पूर्ण कर दी। तुमसे सत्य कहती हूँ; मैं उसे पुत्रवधू ही समझती हूँ। आज से नहीं वर्षों से।

वृजरानी—आज उसे सारे दिन रोते ही बीता। बहुत उदास दिखाई देती है।

सुवामा—तो आज ही इसकी चर्चा छोड़ो। ऐसा न हो, कल किसी ओर प्रस्थान कर दें तो फिर एक युग प्रतीक्षा करनी पड़े।

वृजरानी—(सोचकर) चर्चा करने को तो मैं करूँ, किन्तु माधवी स्वयं जिस उत्तमता के साथ यह कार्य कर सकती है, कोई दूसरा नहीं कर सकता।

सुवामा—वह बेचारी अपने मुख से क्या कहेगी ?

वृजरानी—उसके नेत्र सारी कथा कह देंगे।

सुवामा—लल्लू अपने मन में क्या कहेगे ?

वृजरानी—कहेगे क्या ? यह तुम्हारा भ्रम है जो तुम उसे कुँवारी समझ रही हो। वह प्रतापचन्द्र की पत्नी बन चुकी। ईश्वर के यहाँ उसका विवाह उनसे हो चुका। यदि ऐसा न होता तो क्या जगत् में पुरुष न थे ? माधवी जैसी स्त्री को कौन नेत्रों में न स्थान देगा ? उसने अपना आधा यौवन व्यर्थ रो-रोकर बिताया है। उसने आज तक ध्यान में भी किसी अन्य पुरुष को स्थान नहीं दिया। बारह वर्षों से तपस्विनी का जीवन व्यतीत कर रही है। वह पलग पर नहीं सोई। कोई रंगीन वस्त्र नहीं पहना। केश तक नहीं गुँथाये। क्या इन व्यवहारों से नहीं सिद्ध होता कि माधवी का विवाह हो चुका। हृदय का मिलाप सच्चा

विवाह है। सिंदूर का टीका, ग्रन्थिबन्धन और भाँवर ये सब संसार ढकोसले हैं।

सुवामा—अच्छा, जैसा उचित समझो करो। मैं केवल जगहँसाई से डरती हूँ।

रात के नौ बज गये थे। आकाश पर तारे छिटके हुए थे। माधवी वाटिका में अकेली बैठी हुई तारों को देखती थी और मन में सोचती थी कि ये देखने में कैसे चमकीले हैं, किन्तु अति दूर हैं। कोई वहाँ तक पहुँच सकता है? क्या मेरी आशाएँ भी उन्हीं नक्षत्रों की भाँति हैं। इतने में विरजन ने उसको हाथ पकड़कर हिलाया। माधवी चौंक पड़ी।

विरजन—अँधेरे में बैठी यहाँ क्या कर रही है?

माधवी—कुछ नहीं, तारों को देख रही हूँ। वे कैसे सुहावने लगते हैं, किन्तु मिल नहीं सकते।

विरजन के कलेजे में बर्छी-सी लग गई। धीरज धरकर बोली—‘यह तारे गिनने का समय नहीं है। जिस अतिथि के लिए आग भोर ही से फूली नहीं समाती थी, क्या इसी प्रकार उसकी अतिथि-सेवा करेगी?’

माधवी—मैं ऐसे अतिथि की सेवा के योग्य कब हूँ?

विरजन—अच्छा, यहाँ से उठो तो, मैं अतिथि-सेवा की रीति बताऊँ। दोनों भीतर आईं। सुवामा भोजन बना चुकी थी। बालाजी को माता के हाथ की रसोई बहुत दिनों में प्राप्त हुई। उन्होंने बड़े प्रेम से भोजन किया। सुवामा खिलाती जाती थी और रोती जाती थी। जब बालाजी खा-पीकर लेटे तो विरजन ने माधवी से कहा—अब यहाँ कोने में मुख बाँधकर क्यों बैठी हो?

माधवी—कुछ दो तो खाके सो रहूँ, अब यही जी चाहता है।

विरजन—माधवो! ऐसी निराश न हो। क्या इतने दिनों का व्रत एक दिन में भंग कर देगी?

माधवी उठी, परन्तु उसका मन बैठा जाता था। जैसे मेघों की काली-काली घटाएँ उठती हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि अब जल-

थल एक हो जायगा; परन्तु अचानक पछवा वायु चलने के कारण सारी घटा काई की भाँति फट जाती है, उसी प्रकार इस समय माधवी की गति हो रही है।

वह शुभ दिन देखने की लालसा उसके मन में बहुत दिनों से थी। कभी वह दिन भी आयगा कि मैं उनके दर्शन पाऊँगी? और उनकी अमृत-वांणी से श्रवण तृप्त करूँगी? इस दिन के लिए उसने कैसी मानताएँ मानी थीं? इस दिन के ध्यान से ही उसका हृदय कैसा खिल उठता था?

आज भोर ही से माधवी बहुत प्रसन्न थी। उसने बड़े उत्साह से फूलों का हार गूँथा था। सैकड़ों काँटे हाथ में चुमा लिये। उन्मत्त की भाँति गिर गिर पड़ती थी। यह सब हर्ष और उमंग इसी लिए तो था कि आज वह शुभ दिन आ गया, आज वह दिन आ गया, जिसकी ओर चिरकाल से आँखें लगी हुई थीं। वह समय भी अब स्मरण नहीं, जब यह अभिलाषा मन में न रही हो। परन्तु इस समय माधवी के हृदय की वह गति नहीं है। आनन्द की भी सीमा होती है। कदाचिन् वह माधवी के आनन्द की सीमा थी, जब वह वाटिका में झूम-झूमकर फूलों से आँचल भर रही थी। जिसने कभी सुख का स्वाद ही न चखा हो, उसके लिए इतना ही आनन्द बहुत है। वह बेचारी इससे अधिक आनन्द का भार नहीं सँभाल सकती। जिन अधरों पर कभी हँसी आई ही नहीं, उनकी मुसकान ही हँसी है। तुम ऐसों से अधिक हँसने की आशा क्यों करते हो? माधवी बालाजी की ओर चली; परन्तु इस प्रकार नहीं जैसे एक नवेली बहू आशाओं से भरी हुई शृंगार किये अपने पति के पास जाती है। वही घर था जिसे वह अपने देवता का मन्दिर समझती थी। जब वह मन्दिर शून्य था, तब वह आ-आकर उसमें आँसूओं के पुष्प चढ़ाती थी। आज जब देवता ने वास किया है तो वह क्यों इस प्रकार मचल-मचलकर आ रही है?

रात्रि भली भाँति आर्द्र हो चुकी थी। सड़कपर टॉम्बे के घण्टों के शब्द सुनाई दे रहे थे। माधवी दवे पाँव बालाजी के कमरे के द्वार तक

गई। उसका हृदय धड़क रहा था। भीतर जाने का साहस न हुआ, मानों किसी ने पैर पकड़ लिये। उलटे पाँव फिर आई और पृथ्वी पर बैठकर रोने लगी। उसके चित्त ने कहा—माधवी! यह बड़ी लज्जा की बात है। बालाजी की चेरी सही, माना कि, तुझे उनसे प्रेम है; किन्तु तू उनकी स्त्री नहीं है। तुझे इस समय उनके गृह में रहना उचित नहीं है। तेरा प्रेम तुझे उनकी पत्नी नहीं बना सकता। प्रेम और वस्तु है और सोहाग और वस्तु है। प्रेम चित्त की प्रवृत्ति है और व्याह एक पवित्र धर्म है। तब माधवी को एक विवाह का स्मरण हो आया। वर ने भरी सभा में पत्नी की बाँह पकड़ी थी और कहता था कि इस स्त्री को मैं अपने गृह की स्वामिनी और अपने मन की देवी समझता रहूँगा। इस सभा के लोग, आकाश, अग्नि और देवता इसके साक्षी रहें। हा! ये कैसे शुभ शब्द हैं! मुझे भी कभी ऐसे शब्द सुनने का सौभाग्य प्राप्त न हुआ? मैं न अग्नि को अपना साक्षी बना सकती हूँ, न देवताओं को और न आकाश ही को; परन्तु हे अग्नि! हे आकाश के तारों! और हे देवलोक-वासियों! तुम साक्षी रहना कि माधवी ने बालाजी की पवित्र मूर्ति को हृदय में स्थान दिया; किन्तु किसी निकृष्ट विचार को हृदय में न आने दिया। यदि मैंने घर के भीतर पैर रखा ही तो ऐ अग्नि! तुम मुझे अभी जलाकर भस्म कर दो। हे आकाश! यदि तुमने अपने अनेक नेत्रों से मुझे गृह में जाते देखा हो, तो इसी क्षण मेरे ऊपर इन्द्र का वज्र गिरा दो।

माधवी कुछ काल तक इसी विचार में मग्न बैठी रही। अचानक उसके कान में भक-भक की ध्वनि आई। उसने चौंककर देखा तो बालाजी का कमरा अधिक प्रकाशित हो गया था और प्रकाश खिड़कियों से बाहर निकलकर आँगन में फैल रहा था। माधवी के पाँव तले से मिट्टी निकल गई। ध्यान आया कि मेज पर लैम्प भभक उठा। वायु की भाँति वह बालाजी के कमरे में घुसी। देखा तो लैम्प फटकर पृथ्वी पर गिर पड़ा है और भूतल के विछावन में तेल फैल जाने के कारण आग लग गई है। दूसरे किनारे पर बालाजी सुख से सो रहे

थे। अभी तक उनकी निद्रा न खुली थी। उन्होंने कालीन समेटकर एक कोने में रख दिया था। विष्णु की भाँति लपककर माधवी ने वह कालीन उठा लिया और भभकती हुई ज्वाला के ऊपर गिरा दिया। धमाके का शब्द हुआ तो बालाजी ने चौंककर आँखें खोलीं। घर में धुआँ भरा हुआ था और चतुर्दिक् तेल की दुर्गन्ध फैली हुई थी। इसका कारण वे समझ गये। बोले—कुशल हुआ, नहीं तो कमरे में आग लग गई थी।

माधवी—जी हाँ! यह लैम्प गिर पड़ा था।

बालाजी—तुम बड़े अवसर पर आ पहुँचीं।

माधवी—मैं यहीं बाहर बैठी हुई थी।

बालाजी—तुमको बड़ा कष्ट हुआ। अब जाकर शयन करो। रात बहुत आ गई है।

माधवी—चली जाऊँगी। शयन तो नित्य ही करना है। यह अवसर न जाने फिर कब आये ?

माधवी की बातों में अपूर्व करुणा भरी थी। बालाजी ने उसकी ओर ध्यान-पूर्वक देखा। जब उन्होंने पहिले माधवी को देखा था, उस समय वह एक खिलती हुई कली थी और आज वह एक मुरझाया हुआ पुष्प है। न मुख पर गौन्दर्य था, न नेत्रों में आनन्द की झलक, न माँग में सोहाग का संचार था, न माथे में सिन्दूर का टीका। शरीर में आभूषणों का बिह्व भी न था। बालाजी ने अनुमान से जाना कि विधाता ने ठीक तरुणावस्था में इस दुखिया का सोहाग हरण किया है। परम उदास होकर बोले—क्यों माधवी ! तुम्हारा तो विवाह हो गया है न ?

माधवी के कलेजे में कटारी चुभ गई। सजलनेव्र होकर बोली—हाँ हो गया है।

बालाजी—और तुम्हारा पति ?

माधवी—उन्हें मेरी कुछ सुप ही नहीं। उनका विवाह गुझसे नहीं हुआ। ?

बालाजी विस्मित होकर बोले—तुम्हारा पति करता क्या है ?

माधवी—देश की सेवा ।

बालाजी की आँखों के सामने से एक पर्दा सा हटा गया । वे माधवी का मनोरथ जान गये और बोले—माधवी ! इस विवाह को कितने दिन हुए ?

बालाजी के नेत्र सजल हो गये और मुख पर जातीयता के मद का उन्माद-सा छा गया । भारत-माता ! आज इस पतित अवस्था में भी तुम्हारे अंक में ऐसी ऐसी देवियाँ खेल रही हैं, जो एक भावना पर अपने यौवन और जीवन की आशाएँ समर्पण कर सकती हैं । बोले—ऐसे पति को तुम त्याग क्यों नहीं देती ?

माधवी ने बालाजी की ओर अभिमान से देखा और कहा—स्वामीजी ! आप अपने मुख से ऐसा न कहें ! मैं आर्य-बाला हूँ । मैंने गान्धारी और सावित्री के कुल में जन्म लिया है । जिसे एक बार मन से अपना पति मान चुकी, उसे नहीं त्याग सकती । यदि मेरी आयु इसी प्रकार रोते रोते कट जाय तो भी अपने पति की ओर से मुझे कुछ भी खेद न होगा । जब तक मेरे शरीर में प्राण रहेगा, मैं ईश्वर से उनका हित चाहती रहूँगी । मेरे लिए यही क्या कम है, जो ऐसे महात्मा के प्रेम ने मेरे हृदय में निवास किया है । मैं इसी को अपना सौभाग्य समझती हूँ । मैंने एक बार अपने स्वामी को दूर से देखा था । वह चित्र एक क्षण के लिए भी आँखों से नहीं उतरा । जब कभी मैं बीमार हुई हूँ तो उसी चित्र ने मेरी शुश्रूषा की है । जब कभी मैंने वियोग के आँसू बहाये हैं, तो उसी चित्र ने मुझे सान्त्वना दी है । उस चित्रवाले पति को मैं कैसे त्याग दूँ ? मैं उसकी हूँ और सदैव उसी की रहूँगी । मेरा हृदय और मेरे प्राण सब उनको भेंट हो चुके हैं । यदि वे कहें तो आज मैं अग्नि के अंक में ऐसे हर्षपूर्वक जा वैटूँ जैसे फूलों की शय्या पर । यदि मेरे प्राण उनके किसी काम आये, तो मैं उसे ऐसी प्रसन्नता से दे दूँ, जैसे कोई उपासक अपने इष्टदेव को फूल चढ़ाता हो ।

माधवी का मुखमण्डल प्रेमज्योति से अरुण हो रहा था । बालाजी ने सब कुछ सुना, चुप हो गये । सोचने लगे,—यह वह स्त्री है, जिसने

केवल मेरे ध्यान पर अपना जीवन समर्पण कर दिया है। इस विचार से बालाजी के नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। जिस प्रेम ने एक स्त्री का जीवन जलाकर भस्म कर दिया हो, उसके लिए एक मनुष्य के धैर्य को जला डालना कोई बड़ी बात नहीं। प्रेम के सामने धैर्य कोई वस्तु नहीं है। वे बोले—माधवी ! तुम जैसी देवियाँ भारत का गौरव हैं। मैं बड़ा भाग्यवान हूँ कि तुम्हारे प्रेम जैसी अनमोल वस्तु इस प्रकार मेरे हाथ आ रही है। यदि तुमने मेरे लिए योगिनी बनना स्वीकार किया है, तो मैं भी तुम्हारे लिए इस संन्यास और वैराग्य को त्याग सकता हूँ। जिसके लिए तुमने अपने को भिटा दिया है, वह तुम्हारे लिए बड़ा से बड़ा बलिदान करने से भी नहीं हिचकिचायगा।

माधवी इसके लिए पहले ही से प्रस्तुत थी, तुरत बोली—स्वामीजी ! मैं परम अबला और बुद्धिहीन स्त्री हूँ। परन्तु मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि निज विलास का ध्यान आज तक एक पल के लिए भी मेरे मन में नहीं आया। यदि आपने यह विचार किया कि मेरे प्रेम का उद्देश्य केवल यह है कि आपके चरणों में सांसारिक बन्धनों की ड़ियाँ डाल दूँ, तो (हाथ जोड़कर) आपने इसका तत्त्व नहीं समझा। मेरे प्रेम का उद्देश्य वही था जो आज मुझे प्राप्त हो गया। आज का दिन मेरे जीवन का सबसे शुभ दिन है। आज मैं अपने प्राणनाथ के सम्मुख खड़ी हूँ और अपने कानों से उनकी अमृतमयी वाणी सुन रही हूँ। स्वामीजी ! मुझे आशा न थी कि इस जीवन में मुझे यह दिन देखने का सौभाग्य प्राप्त होगा। यदि मेरे पास संसार का राज्य होता तो मैं इस आनन्द में उसे आपके चरणों में समर्पण कर देती। मैं हाथ जोड़कर आपसे प्रार्थना करती हूँ कि मुझे अब इन चरणों से अलग न कीजिएगा। मैं संन्यास ले लूँगी और आपके संग रहूँगी। मैं वैरागिनी बनूँगी, भभूति रमाऊँगी। परन्तु आपका संग न छोड़ूँगी। प्राणनाथ ! मैंने बहुत दुःख सहे हैं, अब यह जलन नहीं सही जाती।

यह कहते कहते माधवी का कण्ठ रुँध गया और आँखों से प्रेम की धारा बहने लगी। उससे वहाँ न बैठा गया। उठकर प्रणाम किया

और विरजन के पास आकर बैठ गई। वृजरानी ने उसे गले लगा लिया और पूछा—क्या बातचीत हुई ?

माधवी—जो तुम चाहती थीं।

वृजरानी—सच, क्या बोले ?

माधवी—यह न बतलाऊंगी।

वृजरानी को मानों पड़ा हुआ धन मिल गया। बोली—ईश्वर ने बहुत दिनों में मेरा मनोरथ पूरा किया। मैं अपने यहाँ से विवाह करूँगी।

माधवी नैराश्य-भाव से मुसकाई। विरजन ने कम्पित स्वर से कहा—हमको भूल तो न जायगी ? उसकी आँखों में आँसू बहने लगे। फिर वह स्वर सँभालकर बोली—हमसे अब तू बिछड़ जायगी।

माधवी—मैं तुम्हें छोड़कर कहीं न जाऊँगी।

विरजन—चल बातें न बना।

माधवी—देख लेना।

विरजन—देखा है। जोड़ा कैसा पहनेगी।

माधवी—उज्ज्वल, जैसे वगुले का पर।

विरजन—सोहाग का जोड़ा केसरिया रंग का होता है।

माधवी—मेरा श्वेत रहेगा।

विरजन—तुझे चन्द्रहार बहुत भाता था। मैं अपना दे दूँगी।

माधवी—हार के स्थान पर कण्ठी दे देना।

विरजन—कैसी बातें कर रही है ?

माधवी—अपने शृंगार की।

विरजन—तेरी बातें समझ में नहीं आती। तू इस समय इतनी उदास क्यों है ? तूने इस रत्न के लिए कैसी कैसी तपस्याएँ कीं, कैसा कैसा योग साधा, कैसे कैसे व्रत किये और आज तुझे जब वह रत्न मिल गया, तो हर्षित नहीं देख पड़ती।

माधवी—तुम विवाह की बातचीत करती हो, इससे मुझे दुःख होता है।

विरजन—यही तो प्रसन्न होने की बात है।

माधवी—बहिन ! मेरे भाग्य में वह प्रसन्नता लिखी ही नहीं । जो पक्षी बादलों में घोंसला बनाना चाहता है, वह सर्वदा डालियों पर रहता है । मैंने निर्णय कर लिया है कि जीवन का यह शेष समय इसी प्रकार प्रेम का सपना देखने में काट दूँगी ।

[२५]

विदाई

दूसरे दिन बालाजी स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर राजा धर्मसिंह की प्रतीक्षा करने लगे । आज राजघाट पर एक विशाल गोशाला का शिलारोपण होनेवाला था, नगर की हाटघाट और बीथियाँ मुसकुराती हुई जान पड़ती थीं । सड़क के दोनों पार्श्व में झण्डे और झण्डियाँ लहरा रही थीं । गृहद्वार फूलों की माला पहिने स्वागत के लिए तैयार थे ; क्योंकि आज उस स्वदेशप्रेमी का शुभागमन है, जिसने अपना सर्वस्व देश के हित बलिदान कर दिया है ।

हर्ष की देवी अपनी सखी-सहेलियों के संग टहल रही थी । वायु मती थी । दुःख और विषाद का कहीं नाम न था । ठौर ठौर पर बधाइयाँ बज रही थीं । पुरुष मुहावने वस्त्र पहने अठिलाते थे । स्त्रियाँ सोलह शृंगार किये मंगल-गीत गाती थीं । बालक मण्डली केसरिया साफा धारण किये कलोलें करती थी । हर पुरुष स्त्री के मुख से प्रसन्नता झलक रही थी, क्योंकि आज एक सच्चे जाति-हितैषी का शुभागमन है; जिसने अपना सर्वस्व जाति के हित भेंट कर दिया है ।

बालाजी जब अपने मुद्दों के संग राजघाट की ओर चले, तो सूर्य भगवान् ने पूर्व दिशा से निकलकर उनका स्वागत किया । उनका तेजस्वी मुखमण्डल ज्यों ही लोगों ने देखा सहस्रों मुखों से—‘भारत की जय’ का घोर शब्द सुनाई दिया और वायुमण्डल को चीरता हुआ

आकाश-शिखर तक जा पहुँचा। घण्टा और शंखों की ध्वनि निनादित हुई। और उत्सव का सरस राग वायु में गूँजने लगा। जिस प्रकार दीपक को देखते ही, पतंग उसे घेर लेते हैं, उसी प्रकार बालाजी को देखकर लोग बड़ी शीघ्रता से उनके चतुर्दिक़ एकत्र हो गये। भारत-सभा के सवा सौ सभ्यों ने अभिवादन किया। उनकी सुन्दर वर्दियाँ और मनचले घोड़े नेत्रों में खुबे जाते थे। इस सभा का एक एक सभ्य जाति का सच्चा हितैषी था। और उसके उमंग भरे शब्द लोगों के चित्त को उत्साह से पूर्ण कर देते थे। सड़क के दोनों ओर दर्शकों की श्रेणी लगी थी। बधाइयाँ बज रही थीं। पुष्प और मेवों की वृष्टि हो रही थी। ठौर-ठौर नगर की ललनाएँ श्रृंगार किये स्वर्ण के थाल में कर्पूर, फूल और चन्दन लिये आरती करती जाती थीं। दूकानें नवागत वधू की भाँति सुसज्जित थीं। सारा नगर अपनी सजावट से वाटिका का लज्जित करता था और जिस प्रकार श्रावण मास में काली घटाएँ उठती हैं, और रह-रहकर वन की गरज हृदय को कँपा देती है, उसी प्रकार जनता की उमंगवर्द्धक ध्वनि (भारत की जय) हृदय में उत्साह और उत्तेजना उत्पन्न करती थी। जब बालाजी चौक में पहुँचे तो उन्होंने एक अद्भुत दृश्य देखा। बालक-वृन्द ऊँचे रंग के लैसदार कोट पहिने, केसरिया पगड़ी बाँधे, हाथों में सुन्दर छड़ियाँ लिये, मार्ग पर खड़े थे, बालाजी को देखते ही वे दस दस की श्रेणियों में हो गये और अपने डण्डे बजाकर यह ओजस्वी गीत गाने लगे:—

बालाजी तेरा आना सुबारक होवे ॥

धनि धनि भाग्य हैं इस नगरी के, धनि धनि भाग्य हमारे।

धनि धनि इस नगरी के बासी, जहाँ तब चरण पधारे ॥

बालाजी तेरा आना सुबारक हो ॥

कैसा चित्ताकर्षक दृश्य था ! गीत यद्यपि साधारण था; परन्तु अनेक और सधे हुए स्वरों ने मिलकर ऐसा मनोहर और प्रभावशाली बना दिया था कि लोगों के पाँव वहीं रुक गये। चतुर्दिक़ सन्नाटा छा गया, सन्नाटे में यह राग ऐसा सुहावना प्रतीत होता था, जैसे रात्रि के

सन्नाटे में बुलबुल का चहकना । सारे दर्शक चित्र की भाँति खड़े थे । दोन भारतवासियों ! तुमने ऐसे दृश्य कहाँ देखे ? इस समय जी भरकर देख लो । तुम वेश्याओं के नृत्यवाग से सन्तुष्ट हो गये, वारा-ङ्गनाओं की कामलीलाएँ बहुत देख चुके, खूब सैर-सपाटे किये; परन्तु यह सच्चा आनन्द और यह सुखद उत्साह जो इस समय तुम अनुभव कर रहे हो, तुम्हें कभी और भी प्राप्त हुआ था ? मनमोहिनी वेश्याओं के संगीत और मुन्दरियों का काम-कौतुक तुम्हारी वैपयिक इच्छाओं को उत्तेजित करते हैं; किन्तु तुम्हारे उत्साहों को और निर्वल बना देने हैं । और ऐसे दृश्य तुम्हारे हृदयों में जातीयता और जाति-अभिमान का संचार करते हैं । यदि तुमने अपने जीवन में एक बार भी यह दृश्य देखा है, तो उसका पवित्र चिह्न तुम्हारे हृदय से कभी नहीं मिटेगा ।

बालाजी का दिव्य मुखमण्डल आत्मिक आनन्द की ज्योति से प्रकाशित था और नेत्रों में जात्यभिमान की किरणें निकल रही थीं । जिस प्रकार कृपक अपने लहलहाते हुए खेत को देखकर आनन्दोन्मत्त हो जाता है, वही दृशा इस समय बालाजी की थी । जब राग बन्द हो गया, तो उन्होंने कई डग आगे बढ़कर दो छोटे छोटे बच्चों को उठाकर अपने कन्धों पर बैठा लिया और बोले, 'भारत-माता की जय !'

इस प्रकार शनैः शनैः लोग राजघाट पर एकत्र हुए । यहाँ गोशाला का एक गगनस्पर्शी विशाल भवन स्वागत के लिए खड़ा था । आँगन में मखमल का चिछावन बिछा हुआ था । गृहद्वार और स्तम्भ फूलपत्तियों से सुसजित खड़े थे । भवन के भीतर एक सहस्र गायें बंधी हुई थीं । बालाजी ने अपने हाथों से उनकी नाँदों में खली-भूसा डाला । उन्हें प्यार से थपकियाँ दीं । एक विस्तृत गृह में संगमरमर का अष्टभुज कुण्ड बना हुआ था । वह दूध से परिपूर्ण था । बालाजी ने एक चिल्लू दूध लेकर नेत्रों से लगाया और पान किया ।

अभी आँगन में लोग शांति से बैठने भी न पाये थे कि कई मनुष्य

दौड़े हुए आये और बोले कि—पण्डित बदलू शास्त्री, सेठ उत्तमचन्द्र और लाला मक्खनलाल बाहर खड़े कोलाहल मचा रहे हैं और कहते हैं कि हमको बालाजी से दो दो बातें कर लेने दो। बदलू शास्त्री काशी के विख्यात पण्डित थे। सुन्दर चन्द्र-तिलक लगाते, हरी वनात का अँगरखा परिधान करते और बसन्ती पगड़ी बाँधते थे। उत्तमचन्द्र और मक्खनलाल दोनों नगर के धनी और लक्षाधीश मनुष्य थे। उपाधि के लिए सहस्रों व्यय करते और मुख्य पदाधिकारियों का सम्मान और सत्कार करना अपना प्रधान कर्तव्य जानते थे। इन महा-पुरुषों का नगर के मनुष्यों पर बड़ा दबाव था। बदलू शास्त्री जब कभी शास्त्रार्थ करते, तो निःसन्देह प्रतिवादी की पराजय होती। विशेषकर काशी के पण्डे और प्राग्वाल और इसी पन्थ के अन्य धार्मिकगण तो उनके पसीने की जगह रुधिर बहाने को उद्यत रहते थे। शास्त्रीजी काशी में हिन्दू-धर्म के रक्षक और महान् स्तम्भ प्रसिद्ध थे। उत्तमचन्द्र और मक्खनलाल भी धार्मिक उत्साह की मूर्ति थे। लोग बहुत दिनों से बालाजी से शास्त्रार्थ करने का अवसर ढूँढ़ रहे थे। आज उनका मनोरथ पूरा हुआ। वे पंडों और प्राग्वालों का एक दल लिये आ पहुँचे।

बालाजी ने इन महात्माओं के आने का समाचार सुना तो बाहर निकल आये। परन्तु यहाँ की दशा विचित्र पाई। उभय पक्ष के लोग लाठियाँ सँभाले अँगरखे की बाँहें चढ़ाये गुथने को उद्यत थे। शास्त्रीजी प्राग्वालों को भिड़ने के लिए ललकार रहे थे और सेठजी उच्च स्वर से कह रहे थे कि इन शूद्रों की धजियाँ उड़ा दो। अभियोग चलेगा तो देखा जायगा। तुम्हारा बाल बाँका न होने पायेगा। मक्खनलाल साहब गला फाड़ फाड़कर चिल्लाते थे कि निकल आये जिसे कुछ अभिमान हो। प्रत्येक को सच्चा वाग दिखा दूँगा। बालाजी ने जब यह रंग देखा तो राजा धर्मसिंह से बोले—आप बदलू शास्त्री को जाकर समझा दीजिए कि वह इस दुष्टता को त्याग दे। अन्यथा, दोनों पक्षवालों की हानि होगी और जगत् में उपहास होगा सो अलग। राजा साहब के नेत्रों से अग्नि बरस रही थी। बोले—इस पुरुष से

बातें करने में मैं अपनी अप्रतिष्ठा समझता हूँ। उसे प्राग्वालों के समूह का अभिमान है। परन्तु मैं आज उसका सारा मद चूर्ण कर देता हूँ। उनका अभिप्राय इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है कि वे आपके ऊपर वार करें, पर जब तक मैं और मेरे पाँच पुत्र जीवित हैं, तब तक कोई आपकी ओर कुदृष्टि से नहीं देख सकता। आपके एक संकेत मात्र की देर है। मैं पलक मारते उन्हें इस दुष्टता का स्वाद चखा दूँगा।

वालाजी जान गये की यह वीर उमंग में आ गया है। राजपूत जब उमंग में आता है तो उसे मरने-मारने के अतिरिक्त और कुछ नहीं सूझता। बोले—राजा साहब आप दूरदर्शी होकर ऐसे वचन कहते हैं? यह अवसर ऐसे वचनों का नहीं है। आगे बढ़कर अपने आदमियों की रोकिए, नहीं तो परिणाम बुरा होगा।

वालाजी यह कहते कहते थकावत रुक गये। समुद्र की तरंगों की भाँति लोग इधर-उधर से उमड़ते चले आते थे। हाथों में लाठियाँ थीं और नेत्रों में रुधिर की लावनी। मुखमण्डल क्रुद्ध, भृकुटी कुटिल, देखते देखते यह जनसमुदाय प्राग्वालों के सिर पर पहुँच गया; और वह समय सन्निकट था कि लाठियाँ शिर को चूमें कि वालाजी विगुत् की भाँति लपककर एक घोड़े पर सवार हो गये और अति उच्च स्वर से बोले—

“भाइयों! यह क्या अन्धेर है? यदि मुझे अपना भित्र समझते हो, तो झटपट हाथ नीचे कर लो और पैरों को एक इञ्च आगे न बढ़ने दो। मुझे अभिमान है कि तुम्हारे हृदयों में वीरोचित क्रोध और उमंग तरंगित हो रहे है। क्रोध एक पवित्र उद्वेग और पवित्र उत्साह है। परन्तु आत्मसंवरण उससे भी अधिक पवित्र धर्म है। इस समय अपने क्रोध को दृढ़ता से रोको। क्या तुम अपनी जाति के साथ कुल कर्तव्य पालन कर चुके कि इस प्रकार प्राण विसर्जन करने पर कटिबद्ध हो? क्या तुम दीपक लेकर भी कूप में गिरना चाहते हो? ये लोग तुम्हारे स्वदेश-बान्धव और तुम्हारे ही रुधिर हैं। उन्हें अपना शत्रु मत समझो। यदि वे मूर्ख हैं तो उनकी मूर्खता का नकारण

करना तुम्हारा कर्तव्य है। यदि वे तुम्हें अपशब्द कहें तो तुम बुरा मत मानो। यदि वे तुमसे युद्ध करने को प्रस्तुत हों, तो तुम नम्रता स्वीकार कर लो और एक चतुर वैद्य की भाँति अपने विचारहीन रोगियों की औपधि करने में तल्लीन हो जाओ। मेरी इस आज्ञा के प्रतिकूल यदि तुममें से किसी ने हाथ उठाया, तो वह जाति का शत्रु होगा।”

इन समुचित शब्दों से चतुर्दिक् शान्ति छा गई। जो जहाँ था वह वहीं चित्र लिखा-सा हो गया। इस एक मनुष्य के शब्दों में कहाँ का प्रभाव भरा था। जिसने पचास सहस्र मनुष्यों के उमड़ते हुए उद्वेग को इस प्रकार शीतल कर दिया, जिस प्रकार कोई चतुर सारथी दुष्ट घोड़ों को रोक लेता है। और यह शक्ति उसे किसने दी थी? न उमके शिर पर राजमुकुट था, न वह किसी सेना का नायक था, वह केवल उस पवित्र और निःस्वार्थ जाति-सेवा का प्रताप था, जो उसने की थी। स्वजाति-सेवक के मान और प्रतिष्ठा का परिमाण, वे बलिदान होने हैं, जो वह अपनी जाति के लिए करता है। पण्डों और प्राग्वालों ने बालाजी का प्रतापवान् रूप देखा और स्वर सुना, तो उनका क्रोध शान्त हो गया। जिस प्रकार सूर्य के निकलने से कोहरा फट जाता है, उसी प्रकार बालाजी के आने से विरोधियों की सेना तितर-बितर हो गई। बहुत से मनुष्य—जो उपद्रव के उद्देश्य से आये थे—श्रद्धापूर्वक बालाजी के चरणों में मस्तक झुकाकर उनके अनुयायियों के वर्ग में सम्मिलित हो गये। बदलू शास्त्री ने बहुत चाहा कि वह पण्डों के पक्षपात और मूर्खता को उत्तेजित करें, किन्तु सफलता न हुई।

उस समय बालाजी ने एक परम प्रभावशाली वक्तृता दी जिसका एक-एक शब्द आज तक सुननेवालों के हृदय पर अङ्कित है, और जो भारतवासियों के लिए सदा दीपक का काम करेगी। बालाजी की वक्तृताएँ प्रायः सारगर्भित हैं। परन्तु वह प्रतिभा, वह ओज जिनसे यह वक्तृता अलङ्कृत है, उनके किसी व्याख्यान में दीख नहीं पड़ते। उन्होंने अपने वाक्यों के जादू से थोड़ी ही देर में पण्डों को अहीरों और

पासियों से गले मिला दिया। उस वक्तृता के अन्तिम शब्द थे—

“यदि आप दृढ़ता से कार्य करते जायँगे, तो अवश्य एक दिन आपको अभीष्ट-सिद्धि का स्वर्णस्तम्भ दिखाई देगा। परन्तु धैर्य को कभी हाथ से न जाने देना। दृढ़ता बड़ी प्रबल शक्ति है। दृढ़ता पुरुष के सर्व गुणों का राजा है। दृढ़ता वीरता का एक प्रधान अंग है। इसे कदापि हाथ से न जाने देना। तुम्हारी परीक्षाएँ होंगी। तुम्हें लगातार निराशाओं का सामना करना पड़ेगा। वे तुम्हारी प्रतिबन्धक होंगी। ऐसी दशा में दृढ़ता के अतिरिक्त कोई विश्वासपात्र पथप्रदर्शक नहीं मिलेगा। दृढ़ता यदि सफल न भी हो सके, तो संसार में अपना नाम छोड़ जाती है।”

बालाजी ने घर पहुँचकर समाचारपत्र खोला तो मुख पीला हो गया और सकरुण हृदय से एक ठण्डी साँस निकल आई। धर्मसिंह ने घबराकर पूछा—“कुशल तो है ?”

बालाजी—सदिया में नदी का बाँध फट गया; दस सहस्र मनुष्य गृहहीन हो गये।

धर्मसिंह—ओ हो !

बालाजी—सहस्रों मनुष्य प्रवाह की भेंट हो गये। सारा नगर नष्ट हो गया। घरों की छतों पर नावें चल रही हैं। भारतसभा के लोग पहुँच गये। और यथाशक्ति लोगों की रक्षा कर रहे हैं, किन्तु उनकी संख्या बहुत कम है।

धर्मसिंह (सजलनयन होकर)—हे ईश्वर ! तू ही इन अनाथों का नाथ है।

बालाजी—गोपाल-गोशाला बह गई। एक सहस्र गायें जलप्रवाह की भेंट हो गईं। तीन घण्टे तक निरन्तर मूसलाधार पानी बरसता रहा। सोलह इंच पानी गिरा। नगर के उत्तरीय विभाग में सारा नगर एकत्रित है। न रहने को गृह है, न खाने को अन्न। शव की राशियाँ लगी हुई हैं। बहुत से लोग भूखों मरे जाते हैं। लोगों के विलाप और करुण-क्रन्दन से कलेजा मुँह को आता है। सब उत्पात-

पीड़ित मनुष्य बालाजी को बुलाने की रट लगा रहे हैं। उनका विचार है कि मेरे पहुँचने से उनके दुःख दूर हो जायँगे।

कुछ काल तक बालाजी ध्यान में मग्न रहे, तत्पश्चात् बोले—मेरा जाना आवश्यक है। मैं तुरन्त जाऊँगा। आप सदिया की भारत-सभा को तार दे दीजिए कि वह इस कार्य में मेरी सहायता करने को उद्यत रहे।

राजा साहब ने सविनय निवेदन किया—आज्ञा हो तो मैं भी चलूँ ?
बालाजी—मैं वहाँ पहुँचकर आपको सूचना दूँगा। मेरे विचार में आपके जाने की कोई आवश्यकता न होगी।

धर्मसिंह—उत्तम होता कि आप प्रातःकाल ही जाते।

बालाजी—जी नहीं। मुझे यहाँ एक क्षण ठहरना भी कठिन जान पड़ता है। अभी मुझे वहाँ तक पहुँचने में कई दिन लगेंगे।

पल भर में नगर में ये समाचार फैल गये कि सदिया में बाढ़ आ गई और बालाजी इस समय वहाँ जा रहे हैं। यह सुनते ही सहस्रों मनुष्य बालाजी को पहुँचाने के लिए निकल पड़े। नौ बजते बजते द्वार पर पचीस सहस्र मनुष्यों का समुदाय एकत्र हो गया। सदिया की दुर्घटना प्रत्येक मनुष्य के मुख पर थी। लोग उन आपत्ति-पीड़ित मनुष्यों की दशा पर सहानुभूति और चिन्ता प्रकाशित कर रहे थे। सैकड़ों मनुष्य बालाजी के संग जाने को कटिबद्ध हुए। सदियावालों की सहायता के लिए एक फण्ड खोलने का परामर्श होने लगा।

उधर धर्मसिंह के अन्तःपुर में नगर की मुख्य प्रतिष्ठित स्त्रियों ने आज सुवामा को धन्यवाद देने के लिए एक सभा एकत्र की थी। उस उच्च प्रासाद का एक एक कोना स्त्रियों से भरा हुआ था। प्रथम वृजरानी ने कई स्त्रियों के साथ एक मंगल-मय सुहावना गीत गाया। उसके पीछे सब स्त्रियाँ मण्डल बाँधकर गाते-बजाते आरती का थाल लिये सुवामा के गृह पर आईं। सेवती और चन्द्रा अतिथि-सत्कार करने के लिए पहिले ही से प्रस्तुत थीं। सुवामा प्रत्येक महिलाओं से गले मिली और उन्हें आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे अङ्क में भी ऐसे ही सुपूत बच्चे

खेलें। फिर रानीजी ने उसकी आरती की और गाना होने लगा। आज माधवी का मुखमण्डल पुष्प की भाँति खिल रहा था। कल की भाँति मात्र वह उदास और धिन्धित न थी। आशाएँ विष की गाँठ हैं। उन्हीं आशाओं ने उसे कल रुलाया था; किन्तु आज उसका चित्त उन आशाओं से रिक्त हो गया है। इसी लिए मुखमण्डल दिव्य और नेत्र विकसित हैं। निराश रहकर उस देवी ने सारी आयु काट दी; परन्तु आशापूर्ण रहकर उससे एक दिन का दुःख भी न सहा गया।

सुझावने रागों के अलाप से भवन गूँज रहा था कि अचानक सदिया का समाचार यहाँ भी पहुँचा और राजा धर्मपिह यह कहते हुए सुनाई दिये—आप लोग बालाजी को विदा करने लिए तैयार हो जायें। वे अभी सदिया जाते हैं।

यह सुनते ही अर्धरात्रि का सन्नाटा छा गया। सुवामा घबड़ाकर उठी और द्वार की ओर लपकी, मानों वह बालाजी का रोक लेगी। उसके संग सत्र की सत्र बियाँ उठ खड़ी हुईं और उसके पीछे पीछे चलीं। वृजरानी ने कहा—“बची! क्या उन्हें बरबस विदा करोगी? अभी तो वे अपने कमरे में हैं।”

‘मैं उन्हें न जाने दूँगी। विदा करना कैसा?’

वृजरानी—उनका सदिया जाना आवश्यक है।

सुवामा—मैं क्या सदिया को लेकर चाटूँगी? भाड़ में जाय! मैं भी तो कोई हूँ? मेरा भी तो उनपर कोई अधिकार है?

वृजरानी—तुम्हें मेरी शपथ, इस समय ऐसी बातें न करना। सहस्रों मनुष्य केवल उनके भरोसे पर जी रहे हैं। ये न जायँगे तो प्रलय हो जायगा।

माता की ममता ने मनुष्यत्व और जातित्व को दबा लिया था, परन्तु वृजरानी ने समझा-बुझाकर उसे रोक लिया। सुवामा इस घटना को स्मरण करके सर्वदा पछताया करती थी। उसे आश्चर्य होता था कि मैं आपसे बाहर क्यों हो गई थी! रानोजी ने पूछा—विरजन! बालाजी को जयमाल कौन पहिनायेगा?

विरजन—आप ।

रानीजी—और तुम क्या करोगी ?

विरजन—मैं उनके माथे पर तिलक लगाऊँगी ।

रानीजी—माधवी कहाँ है ?

विरजन—(धीरे से) उसे न छेड़ो । बेचारी अपने ध्यान में मग्न है ।

इसी बीच में बालाजी बाहर निकले । स्त्रियाँ भी उनकी ओर वहीं । बालाजी ने सुवामा को देखा तो निकट आकर उसके चरणस्पर्श किये । सुवामा ने उन्हें उठाकर हृदय से लगाया । कुछ कहना चाहती थी ; परन्तु ममता से मुख न खोल सकी । रानीजी फूलों की जयमाला लेकर चली कि उनके कण्ठ में डाल दूँ ; किन्तु चरण थर्राये और आगे न बढ़ सकीं । वृजरानी चन्दन का थाल लेकर चली, परन्तु नेत्र श्रावण-घन की भाँति बरसने लगे । तब माधवी चली । उसके नेत्रों में प्रेम की झलक थी और मुख पर प्रेम की लाली ! अधरों पर मोहनी मुसकान झलक रही थी और मन प्रेमानन्द में मग्न था । उसने बालाजी की ओर ऐसी चितवन से देखा जो अपार प्रेम से भरी हुई थी । तब सिर नीचा करके फूलों की जयमाला उनके गले में डाली । ललाट पर चन्दन का तिलक लगाया । लोक-संस्कार की न्यूनता थी, वह भी पूरी हो गई । उस समय बालाजी ने गम्भीर सांस ली । उन्हें प्रतीत हुआ कि मैं अपार प्रेम के समुद्र में बहा जा रहा हूँ । धैर्य का लंगर उठ गया और उस मनुष्य की भाँति जो अकस्मात् जल में फिसल पड़ा हो, उन्होंने माधवी की बाँह पकड़ ली । परन्तु हा ! जिस तिनके का उन्होंने सहारा लिया ; वह स्वयं प्रेम की धार में तीव्र गति से बहा जा रहा था । उनका हाथ पड़ते ही माधवी के रोम-रोम में विजली दौड़ गई । शरीर में स्वेद-विन्दु झलकने लगे और जिस प्रकार वायु के झोंके से पुष्पदल पर पड़े हुए ओस के जलकण पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं, उसी प्रकार माधवी के नेत्रों से अश्रु के विन्दु बालाजी के हाथ पर टपक पड़े । ये प्रेम के मोती थे जो इन मतवाली आँखों ने बालाजी की भेंट किये । आज से ये आँखें फिर न रोयेंगी ।

आकाश पर तारे छिटके हुए थे और उनकी आड़ में बैठी हुई स्त्रियाँ यह दृश्य देख रही थीं। आज प्रातःकाल बालाजी के स्वागत में यह गीत गाया गया था—

बालाजी, तेरा आना मुबारक होवे ।

और इस समय स्त्रियाँ अपने मन-भावन स्वरों से गा रही हैं—

बालाजी, तेरा जाना मुबारक होवे ।

आना भां मुबारक था और जाना भी मुबारक है। आने के समय भी लोगों की आँखों से आँसू निकले थे और जाने के समय भी निकल रहे हैं। कल वे नवागत अतिथि के स्वागत के लिए आये थे। आज उसकी विदाई कर रहे हैं। उनके रंग-रूप सब पूर्ववत् हैं; परन्तु उनमें कितना अन्तर है ?

(२६)

मतवाली योगिनी

माधवी प्रथम ही से मुरझाई हुई कली थी। निराशा ने उसे खाक में मिला दिया। बीस वर्ष की तपस्विनी, योगिनी हो गई। उस बेचारी का भी कैसा जीवन था कि या तो मन में कोई अभिलाषा ही उत्पन्न न हुई; या हुई तो दुर्दैव ने उसे कुसुमित न होने दिया। उसका प्रेम एक अपार समुद्र था। उसमें ऐसी बाढ़ आई कि जीवन की आशाएँ और अभिलाषाएँ सब नष्ट हो गईं। उसने योगिनी के-से वस्त्र पहिन लिये। वह सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो गई। संसार इन्हीं इच्छाओं और आशाओं का दूसरा नाम है। जिसने उन्हें नैराश्य-नद में प्रवाहित कर दिया, उसे संसार में समझना भ्रम है।

इस प्रेम के मद से मतवाली योगिनी को एक स्थान पर शान्ति न

मिलती थी। पुष्प की सुगन्धि की भाँति देश-देश भ्रमण करती और प्रेम के शब्द सुनाती फिरती थी। उसके पीत वर्ण पर गेरुए रंग का वस्त्र परम शोभा देता था। इस प्रेम की मूर्ति को देखकर लोगों के नेत्रों से अश्रु टपक पड़ते थे। जब वह अपनी वीणा बजाकर कोई गीत गाने लगती, तो सुननेवालों के चित्त अनुराग में पग जाते थे। उसका एक-एक शब्द प्रेमरस में डूबा होता था।

मतवाली योगिनी को बालाजी के नाम से प्रेम था। वह अपने पदों में प्रायः उन्हीं की कीर्ति सुनाती थी। जिस दिन से उसने योगिनी का वेष धारण किया और लोक-लाज को प्रेम के लिए परित्याग कर दिया, उसी दिन से उसकी जिह्वा पर मानों सरस्वती बैठ गई। उसके सरस पदों को सुनने के लिए लोग सैकड़ों कोस चले जाते थे। जिस प्रकार मुरली की ध्वनि सुनकर गोपियाँ घरों से व्याकुल होकर निकल पड़ती थीं, उसी प्रकार इस योगिनी की तान सुनते ही श्रोताजनों का नद उमड़ पड़ता था। उसका पद सुनना आनन्द के प्याले पीना था।

इस योगिनी को किसी ने हँसते या रोते नहीं देखा। उसे न किसी बात का हर्ष था, न किसी बात का विषाद। जिस मन में कामनाएँ न हों, वह क्यों हँसे और क्यों रोये? उसका मुख-मण्डल आनन्द की मूर्ति था। उसपर दृष्टि पड़ते ही दर्शकों के नेत्र पवित्र आनन्द से परिपूर्ण हो जाते थे।



ભાગ્યમા વળી મિલવ વા. ના
જાગુના મિત્રો રચી વળેલે ૨

તું તે વિચાર પર્યટા સિદ્ધ
નિશ્ચયિત વારલે નેજ વાર
ના વારલે મહીના -

જા અમ તમા આઈ મિત્ર
વધી - કો રાત - - - ૨

શમાન વ્યા જા રે
મી મુત મુલા દે મિત્ર
જો મોદ પુલી સ્થા દે

ના

